Master of Arts (Hindi) (DDE)

Semester – II

Paper Code – 20HND22C4

BHASHA VIGYAN AVAM HINDI BHASHA-II

भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा–II

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

Material Production

Content Writer: *Dr.* _____

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

ISBN :

Price : Rs. 325/-

Publisher: Maharshi Dayanand University Press

Publication Year : 2021

एम0 ए0 द्वितीय सेमेस्टर
चतुर्थ प्रश्नपत्र : भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा– II

Hard Core **Paper code: 20HND22C4**

समय : 3 घण्टे

पूर्णांक : 100 अंक
आंतरिक मूल्यांकन : 20 अंक
लिखित : 80 अंक

Course Outcomes

CO 1. भाषा एवं भाषा विज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप की सैद्धांतिक जानकारी

CO 2. स्वनविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप तथा वाक् उत्पादन प्रक्रिया का ज्ञान

CO 3. रूपविज्ञान, वाक्य एवं अर्थ विज्ञान की सैद्धांतिक जानकारी

CO 4. हिंदी भाषा का इतिहास एवं विकास क्रम का ज्ञान कराना

CO 5. लिपि विज्ञान की सैद्धांतिक जानकारी देते हुए हिंदी प्रचार–प्रसार में व्यक्तियों तथा संस्थाओं के योगदान की जानकारी।

1. **हिंदी भाषा का इतिहास**

   प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ – वैदिक एवं लौकिक संस्कृत

   मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाएँ : परिचय

   संस्थाओं के योगदान की जानकारी

2. **हिंदी का विकासात्मक स्वरूप**

   हिंदी की उप भाषाएँ :

   पूर्वी हिंदी और उनकी बोलियाँ

   पश्चिमी हिंदी और उनकी बोलियाँ

   मानक हिंदी का स्वरूप

   काव्य – भाषा के रूप में अवधी का विकास

   काव्य – भाषा के रूप में ब्रज का विकास

   साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली का विकास

   हिंदी की संवैधानिक स्थिति

3. **हिंदी का भाषिक स्वरूप**

   स्वनिम व्यवस्था : स्वर–परिभाषा और वर्गीकरण

   व्यंजन– परिभाषा और वर्गीकरण

   हिंदी शब्द संरचना : उपसर्ग, प्रत्यय, समस्तपद

हिंदी व्याकरणिक कोटियाँ : वचन, पुरुष, कारक और काल की व्यवस्था संदर्भ में हिंदी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया रूप

हिंदी वाक्य रचना

हिंदी के विविध रूप, बोली, भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा,

माध्यम भाषा, संचार भाषा

4. नागरी लिपि और हिंदी प्रचार–प्रसार

हिंदी : प्रचार–प्रसार प्रमुख व्यक्तियों का योगदान

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता

नागरी लिपि का मानकीकरण

5. **हिंदी कंप्यूटिंग**

कंप्यूटर परिचय एवं महत्त्व

वर्तनी–शोधन

सहायक ग्रंथ

विषयसूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	हिंदी भाषा का इतिहास	1
2.	हिंदी का विकासात्मक स्वरूप	21
3.	हिंदी का भाषिक स्वरूप	51
4.	नागरी लिपि और हिंदी प्रचार–प्रसार	75
5.	हिंदी कंप्यूटिंग	93

अध्याय 1

हिंदी भाषा का इतिहास

भारतीय आर्य भाषाएँ

भारतीय आर्यभाषा का महत्त्व संसार की सभी भाषाओं में सार्वाधिक है। ये भाषाएँ समृद्ध साहित्य व्याकरण के सम्मत रूप और प्रयोग पर अपनी पहचान के साथ सामने आई हैं।

भारतीय आर्यभाषा का विभाजन

भारतीय आर्यभाषा की पूरी शृंखला को 3 भागों में विभाजित किया जाता है।

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ (प्रा0 भा0 आ0) –1500 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 तक।

(ख) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ (म0 भा0 आ0) –500 ई0 से 1000 ई0 पू0 तक।

(ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (आ0 भा0 आ0) –1000 ई0 सन् से अब तक।

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ :

इनका समय 1500 ई. पू0 तक माना जाता है। वस्तुतः यह विवादास्पद विषय है। इस वर्ग में भाषा के दो रूप उपलब्ध होते हैं (i) वैदिक या वैदिक संस्कृत, (ii) संस्कृत या लौकिक संस्कृत। इन दोनों का भी पृथक–पृथक परिचय अपेक्षित है।

(i) वैदिक या वैदिक संस्कृत – इसे 'वैदिक भाषा', वैदिकी', छान्द या 'प्राचीन संस्कृत' भी कहा जाता है। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है। यद्यपि अन्य तीनों संहिताओं, ब्राह्मणों–ग्रंथों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि की भाषा भी वैदिक ही है, किंतु इन सभी में भाषा का एक ही रूप नहीं मिलता। 'ऋग्वेद' के दूसरे मण्डल से नौवें मण्डल तक की भाषा ही सर्वाधिक प्राचीन है। यह 'अवेस्ता' के अत्यधिक निकट है। शेष संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों में भाषा ही प्राचीनतम है, जिनमें आर्यों का वातावरण तत्कालीन पंजाब के वातावरण से मिलता–जुलता वर्णित है। इसी प्रकार वैदिक भाषा के दो अन्य रूप दूसरा और तीसरा भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं। दूसरे रूप मध्यदेशीय भारत का तथा तीसरे रूप पूर्वी भारत का प्रभाव लक्षित होता है। ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा का प्रवाह अनेक शताब्दियों तक रहा होगा।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा का जो रूप हमें आज वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद में मिलता है, वह तत्कालीन साहित्यक भाषा ही थी, बोलचाल की भाषा नहीं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा को जानने का कोई साधन आज हमें उपलब्ध नहीं है। हाँ, साहित्यक वैदिक के आधार पर हम उसका कुछ अनुमान अवश्य ही कर सकते हैं।

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ मूलभारोपीय ध्वनियों से कई बातों से भिन्न हैं–

1. मूलभारोपीय तीन मूलहस्व स्वर– अ, ऐ, ओं के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'अ' ही मूल ह्रस्व स्वर शेष है।

2. मूलभारोपीय तीन मूल दीर्घ स्वरों–आ, ऍ, ओ के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'आ' ही मूल दीर्घ शेष है।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1. मूलरूपों में प्राप्त न् म् अन्तस्थ ध्वनियों का वैदिक में लोप हो गया है।
2. मूलभारोपीय में तीन प्रकार की कवर्ग ध्वनियाँ थीं, किन्तु वैदिक में एक ही प्रकार की कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्) ध्वनियाँ हैं।
3. मूलभारोपीय में कवर्ग तथा टवर्ग का नितांत अभाव था, जबकि वैदिक ध्वनियों में ये दो वर्ग आ मिले जिसका कारण द्रविड़ भाषा का प्रभाव है।
4. मूलभारोपीय में एक ही 'स्' (न्नष्म) ध्वनि थी। वैदिक में इसके साथ श् तथा ष् ये दो (न्नष्म) ध्वनियाँ और आ जुड़ी हैं।

वैदिक ध्वनि–समूह

मूलस्वर	–	अ, आ, इ, ई, उ, न्न्, ऋ, ॠ, ऌ, ए आ	= 11
संयुक्त स्वर	–	ऐ, (अई), और (अउ)	= 2
कण्ट	–	क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, (कवर्ग)	= 5
तालव्य	–	च्, छ्, ज्, झ्, ञ् (चवर्ग)	= 5
मूर्धन्य	–	ट्, ठ्, ड्, ल्, ढ्, ल्ह्, ण्, (टवर्ग)	= 7
दन्त	–	त्, थ्, द्, ध्, न्, (तवर्ग)	= 5
ओष्ठय	–	प्, फ्, ब्, भ्, म्, (पवर्ग)	= 5
दन्तोष्ठय	–	व्	= 1
अतस्य	–	य्, र्, ल्, व्	= 4
शुद्ध अनुनासिक –अनुस्वार (.)			= 1
संघर्षी – श्, ष्, स्, ह्, (क्, ख्, से पूर्व अर्द्धविसर्गसदृश)			
जिह्वामुलीय, (प्, फ्, से पूर्व अर्द्धविसर्ग सदृश) उपध्मानीय			= 6
		कुल	= 52

वैदिक भाषा की विशेषताएँ

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती हैं। इस दृष्टि से वैदिक भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं :–

1. वैदिक भाषा में स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण के साथ ही उनका प्लुत उच्चारण भी होता है; जैसे, आसी त्, विन्दती इतयादि।

2. वैदिक भाषा में 'ऌ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।
3. वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वरघात का बहुत महत्व है। इसमें तीन प्रकार के स्वर हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वर–परिवर्तन से शब्दों के अर्थों में भी परिवत्रन हो जाता है। 'इन्द्रशत्रुः इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी वैदिक भाषा की स्वराघात प्रधानता का बहुत महत्व है।
4. वैदिक भाषा की व्यद्रजन ध्वनियों में ल् के और लह् दो ऐसी ध्वनियाँ हैं, जो उसे अन्य भाषा से पृथक् करती है; जैसे 'इला', 'अग्निमीले' आदि में।
5. प्राचीन वैदकि भाषा में 'ल्' के स्थान पर प्रायः 'र्' का व्यवहार मिलता है; जेसे– 'सलिल' के स्थान पर 'सरिर'।
6. वैदिक भाषा में सन्धि–नियमों में पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। अनेक बार सन्धि–योग्य स्थलों पर भी सन्धि नहीं होतती और दो स्वर साथ–साथ प्रयुक्त हो जाते हैं; जैसे– 'तितउ' (अ, उ) 'गोओपाशा' (ओ, औ)
7. वैदिक भाषा में शब्द रूपों में पर्याप्त अनेकरूपता मिलती है। उदाहरण के लिए प्रथमा विभिक्ति, द्विवचन, 'देवा' और 'देवौ', प्रथमा विभिक्ति बहुवचन में 'जनाः' और जनासः तृतीय विभक्ति बहुवचन में 'देवैः और 'देवेभिः' दो–दो रूप मिलते हैं। यह विविधता अन्य रूपों में भी मिलती है।
8. यही विविधता धातुरूपों में भी उपलब्ध हैं एक ही 'कृ' धातु के लट्–लकार, प्रथम पुरुष में 'कृणुते', 'करोति', 'कुरुते', 'करति' आदि अनेक रूप मिलते हैं।
9. धातुओं से एक ही अर्थ में अनेक प्रत्यय लगते हैं। जैसे–' एक ही 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में 'तुमुन्', 'से', 'सेन', 'असे', 'असेन्', 'कसे', 'कसेन्', 'अध्यै', 'अध्यैन्', 'कध्यैन्, 'शध्यैन्', 'तवै', 'तवैड्', और 'तवैड्', और 'तवेन्' ये 16 प्रत्यय मिलते हैं।
10. वैदिक भाषा में उपसर्गों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से होता था। उदाहरणार्थ अभित्वा पूर्वपीतये सृजामि'', (ऋग्वेद यहाँ 'अभि' उपसर्ग का प्रयोग 'सृजामि' क्रियापद से पृथक् स्वतंत्र रूप से हुआ है। इसी प्रकार '''मानुषान्–अभि'' (ऋ 'अभि' स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है।)
11. पदरचना की दृष्टि से वैदिक भाषा श्लिष्टयोगात्मक हैं सम्बनधतत्व (प्रत्यय) के जुड़ने पर यहाँ अर्थतत्व (प्रकृति) में कुछ परिवर्तन तो हो जाता है, किन्तु अर्थतत्व तथा संबंधतत्त्व को पृथक्–पृथक् पहचाना जा सकता है। जैसे–'गृहाणाम्', यहाँ 'गृह' प्रकृति तथा 'नाम्' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

संक्षेप में वैदिक भाषा में प्रयोगों की अनेकरूपता को देखने से प्रतीत होता है कि आज वैदिक भाषा का तथा काल–भिन्नता, दोनों का ही होना संभव है। संभवतः उस काल की जनसामान्य की विविध बोलियों का ही, हिन्दी में खड़ी बोली के समान, एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है, जो हमें आज 'ऋग्वेद' आदि में उपलब्ध होती है।

संस्कृत भाषा

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा रूप 'संस्कृत' है। इसी को 'लौकिक संस्कृत' या 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहा जाता है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है। भारत में 'रामायण' 'महाभारत' से भी पहले से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य रचना हो रही है। गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक

उन्नति हुई थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में से एक है। 'वाल्मीकि', 'व्यास', 'कालिदास', आदि इसकी महान् विभूतियाँ हैं। विश्व–विख्यात महाकवि कालीदास का 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' नाटक संस्कृत भाषा श्रृंगार है। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रंथों का अनुवाद हुआ है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत का महत्व बहुत अधिक है। संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का प्रारंभ हुआ।

संस्कृत का विकास उत्तरी भारत में बोली जाने वाली वैदिककालीन भाषा से माना जाता है, यद्यपि भारत के मध्य भाग तथा पूर्वी भाग की बोलचाल की भाषाओं का प्रभाव भी उस पर रहा होगा। लगभग 8 शताब्दी ई0 पूर्व में इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। यह वह अवस्था है, जब संस्कृत की आधारभूत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों के रूप में हो रहा था। अनुमान किया जाता है कि लगभग ई0 पू0 5वीं शताब्दी या कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक संस्कृत की आधारभूत यह भाषा बोली जाती थी और तब तक उत्तर भारत में कई अन्य ऐसी बोलियाँ भी जन्म ले चुकी थी, जिनसे आगे चलकर अनेक प्राकृतों, अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है।

लगभग ई0 पू0 5वीं शताब्दी या 7 वीं शताब्दी में 'पाणिनी' ने संस्कृत की उस आधारभूत भाषा को व्याकरण के नियमों से बद्ध करके एकरूपता प्रदान की और यह भाषा 'संस्कृत' कहलाने लगी। अर्थात् अपने स्वाभाविक विकास के कारण, नियंत्रण के हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अभाव में जो भाषा प्राकृत (विकृत) रूप में चल रही थी, वह तब 'संस्कृत' हो गयी। उसका संस्कार कर दिया गया, उसे शुद्ध रूप प्रदान कर दिया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस काल में 'संस्कृत' साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी, उस समय भारत में स्वयं साहित्यिक संस्कृत की आधारभूत बोली तथा उससे मिलती–जुलती कई अन्य बोलियाँ भी व्यवहार में थी, किंतु उन सबमें 'संस्कृत' ही शिष्ट, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

संस्कृत ध्वनियाँ

वैदिक भाषा में 52 ध्वनियाँ थी, संस्कृत में ध्वनियों की संख्या केवल 8 हैं। अर्थात् वैदिक भाषा की ध्वनियाँ ल्, लृह्, जिह्वामलीय तथा उपध्मानीय–संस्कृत में नहीं मिलती हैं। इसके साथ ही अनेक ध्वनियों में परिवर्तन भी मिलता है। उदाहरण के लिए (1) वैदिक में 'ऋ' और 'लृ' का उच्चारण स्वर ध्वनियों के रूप में था, किन्तु संस्कृत में इनकी स्वरता नष्ट हो गई ओर इनका उच्चारण 'र' और 'ल्' व्यद्रजनों जैसा होने लगा। (2) दन्तोष्ठय 'व्' का उच्चारण भी अन्तस्थ 'व्' जैसा ही हो गया है। (3) वैदिक भाषा की शुद्ध 'अनुस्वार (.) ध्वनि भी संस्कृत में अनुनासिक हो गई है। (4) 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण संयुक्त स्वरों जेसा न होकर मूलस्वरों जैसा होने लगा।

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ

संस्कृत लौकिक संस्कृत वा क्लासिकल संस्कृत की सबसे प्रमुख विशेषता पाणिनिकृत नियमबद्धता है। संस्कृत की विशेषता ही उसे वैदिक से पृथक् करती है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक भाषा में शब्दरूपों तथा क्रिया–रूपों की विविधता है, सन्धि–नियमों आदि में भी पर्याप्त शिथिलता हैं एक ही अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग है, आदि–आदि। इन सबके साथ ही वैदिक भाषा में अपवादों की संख्या भी बहुत अधिक है तथा भाषा में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

इसके विपरीत, संस्कृत या लौकिक संस्कृत बहुत ही नियमबद्ध तथा नियन्त्रित है। उसकी विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है –

1. वैदिक भाषा में प्रयुक्त ल्, ल्ह्, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियों का संस्कृत में लोप हो गया है।

2. पाणिनिकृत नियमों (अध्टाध्यायी–सूत्रों) के द्वारा उसमें शब्द–रूपों तथा क्रियारूपों में एकरूपता आ गयी है।
3. 'लट्' लकार का प्रयोग समाप्त हो गया है।
4. एक ही अर्थ में प्रयुक्त अनेक प्रत्ययों के स्थान पर केवल एक ही प्रत्यय का प्रयोग रूढ़ हो गया; जैसे 'तुमुन''कत्वा' आदि।
5. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग बन्द हो गया; जैसे–'दर्शत्' (=सुन्दर), 'दृशीक' (=सुन्दर), 'रपस्' (=चोट, दुर्बलता, रोग), 'अमूर' (= बुद्धिमान), 'मूर' (=मूढ़) 'ऋदूदर' (= दयालु), 'अक्तु' (= रात्रि), 'अमीवा' (= व्याधि) आदि।
6. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में भिन्न अर्थों में होने लगा; जैसे–

	शब्द		वैदिक–अर्थ		संस्कृत–अर्थ
1.	अराति	=	शत्रुता	=	शत्रु
2.	अरि	=	ईश्वर, धार्मिक शत्रु	=	केवल शत्रु
3.	न	=	उपमावाचक (जैसा), निषेधवाचक (नहीं)	=	निषेधवाचक (नहीं)
4.	मृलीक	=	कृपा	=	शिव का एक नाम
5.	क्षिति	=	गृह, निवासस्थान बस्ती, मनुष्य	=	पृथ्वी
6.	वध	=	भयंकर शस्त्र	=	हत्या करना आदि आदि।

7. सन्धि–कार्य अनिवार्य–सा हो गया।
8. उपसर्गों का स्वतंत्र प्रयोग बन्द हो गया।
9. स्वरों में 'लृ' प्रायः लुप्त–सा हो गया। स्वरों का उदत्त–अनुदत्त और स्वरित उच्चारण समाप्त हो गया।
10. स्वरभक्ति अप्रचलित हो गई।

इस प्रकार वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत भाषा अधिक नियमित एवं व्यवस्थित हो गई तथा वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत के रूप में पर्याप्त परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन को जानने के लिए यहाँ दोनों की तुलना प्रस्तुत करना आवश्यक है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ

लौकिक संस्कृत एक तरफ व्याकरण का आधार पाकर अपने निश्चित रूप में स्थिर हो गई, तो दूसरी तरफ लोक–भाषा तेजी से विकसित हो रही थी। इसी विकास के परिणामस्वरूप प्राकृत भाषा का विकास–काल ई0 पू0 500 से 1000 ई0 माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के तीन रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं।

(क) पाली : यह प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है जिसका समय 500 ई0 पूर्व के प्रथम शताब्दी के प्रारंभ तक माना गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृत की उत्पत्ति प्राकृत से हुई है। एक अन्य मत के अनुसार संस्कृत के समानान्तर, लोकभाषा से इसका उद्भव

हुआ हैं इसमें प्रथम मन्तव्य अधिक उपयुक्त लगता है।

पाली–व्युत्पत्तिः इसकी व्युत्पति के विषय में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने ढंग से विचार प्रस्तुत किए गए हैं –

1. भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार पाठ > पालि।
2. भिक्षु जगदीश काश्यप के अनुसार परियाय (बुद्धउपदेश) > पलियाय > पालि
3. आचार्य विधु शेखर के अनुसार पंक्ति > पंति > पंति > पल्लि > पालि।
4. डॉ0 मेक्स वेलसन के अनुसार पाटिल (पटना) > (पटना) > पाडलि > पालि।

विशेषताएँ

1. इसमें से ऋ, लृ, ऐ, औ, श, ष, तथा विसर्ग आदि वैदिक ध्वनियाँ लुप्त हो गई हैं।
2. पालि में प्रायः संस्कृत की ए ध्वनि ऐ और ओ ध्वनि औ हो गई है; यथा–कैलाष > केलाश, गौतम > गोतम।
3. इसमें विसर्ग सन्धि नहीं है।
4. पाली में तीनों लिंग हैं।
5. द्विवचन की व्यवस्था नहीं है।
6. इसमें बलाघात का प्रयोग होता है।
7. पाली में परम्परागत तद्भव शब्दों की बहुलता है।

(ख) प्राकृत : इसे द्वितीय प्राकृत और साहित्यिक प्राकृत भी कहते हैं। इसका काल प्रथम शताब्दी से 5वीं शताब्दी तक है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके भिन्न–भिन्न रूप विकसित हो गये थे।

1. मागधी : इसका विकास मगध के निकटवर्ती क्षेत्र में हुआ। इसमें कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है।

विशेषताएँ :

1. इसमें स का – रूप हो जाता है; यथा–सप्त > –त्त, पुरू– > पुलिस।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2. इसमें र का ल हो जाता है; यथा– पुरुष > पुलिश
3. ज के स्थान पर य हो जाता है, यथा– जानाति > याणदि।

2. अर्ध–मागधीः यह मागधी तथा शौरसेनी के मध्य बोली जाने वाली भाषा थी। यह जैन साहित्य की भाषा थी। भगवान महावीर के उपदेश इसी में है।

विशेषताएँ

1. इसमें श, ष, स के लिए केवल स का प्रयोग होता है; यथा– श्रावक > सावग।
2. इसमें दन्त्य ध्वनियाँ मँर्धन्य हो जाती है; स्थिर > ठिय।
3. स्पर्श ध्वनि के लोप पर य श्रुति मिलती है; यथा– सागर > सायर, गगन > गयन
4. महाराष्ट्री : इसका मँल स्थान महाराष्ट है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। गाह्य सत्तसई (गाथा सप्तशती), गडवहो (गौडवधः) आदि काव्य ग्रंथ इसी भाषा में है।

विशेषताएँ :

1. स्वर बाहुल्य और संगीतात्मकता है।
2. श, ष, स, का ह हो जाता है; यथा – दश > दह, दिवस > दिवह।
3. दो स्वरों के मध्य व्यंजन लोप हो जाता है; यथा – रिपु > रिन्न, नुपँर > णेउर।
4. क्ष का च्छ हो जाता है; यथा– इक्षु > इच्छु।
5. कुछ महाप्राण ध्वनियाँ ह में परिवर्तित हो जाती है; यथा– शाखा > शाहा, अथ > अह।

पैशाची : इसका क्षेत्र कश्मीर माना गया है। ग्रियर्सन ने इसे दरद से प्रभावित माना है। साहित्यिक रचना की दृष्टि से यह भाषा शून्य है।

विषेशताएँ

1. सघोष ध्वनियाँ अघोष हो जाती हैं; यथा– नगर > नकर।
2. र और ल का विपयर्य हो जाता है; यथा– कुमार > कुमाल, रूधिर > लुधिर।
3. ष का स या श हो जाता है; यथा– तिष्ठति > तिश्तदि, विषम > विसम।
4. शौरसेनी : यह मध्य की भाषा थी। इसका केन्द्र मथुरा था। नाटकों में स्त्री–पात्रों के संवाद इसी भाषा में होते थे। दिगम्बर जैन से सम्बंधित धर्मग्रंथ इसी में रचे गए हैं।

विशेषताएँ

1. इसमें क्ष का क्ख हो जाता है; यथा – चक्षु > चक्खु।
2. इसमें न ध्वनि ण हो जाती है; यथा – नाथ > णाथ।
3. इसमें आत्मनेपद लगभग समाप्त है, केवल परस्मैपद मिलता है।

(ग) अपभ्रंश : इसका शाब्दिक अर्थ है– विकृत या भ्रष्ट। इसका प्राचीनतम रूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कुछ पद मिलते हैं। अपभ्रंश में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ हुई हैं; यथा– विद्यापति कृत कीर्तिलता, अद्दहमाण कृत संदेश–रासक आदि। इसका समय 500 ई0 से 1000 ई0 तक माना जाता है, किन्तु इसमें कुछ एक रचनाएँ 14वीं और 15वीं शताब्दी तक होती रही हैं।

विशेषताएँ

1. ऋ ध्वनि लेखन में थी, उच्चारण में लुप्त हो चुकी थी।
2. श, ष के स्थान पर प्रायः स का प्रयोग होता है।
3. इसमें उ ध्वनि की बहुलता है; यथा– जगु, > एक्कु, कारणु आदि।
4. म के स्थान पर वँ ध्वनि होती है; यथा– कमल > कँवल।
5. क्ष का क्ख हो जाता है; यथा– पक्षी > पक्खी।
6. य ध्वनि ज हो जाती है; यथा – यमुना > जमुना, युगल > जुगल।
7. नपुंसक लिंग और द्विवचन लुप्त हो चुके हैं।
8. इसमें तद्भव शब्दों की बहुलता मिलती है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्‌भव 1000 ई0 के लगभग हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है। इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारत आर्यभाषाओं में की जाती है। इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात् से संबंधित साहित्य प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में हुआ है। इसलिए इन दोनों वर्गों की भाषाओं में पर्याप्त समता है और अनेक भिन्न विशेषताओं का भी विकास हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर इन्हें अन्य वर्ग की भाषाओं से अलग कर सकते हैं।

विशेषताएँ

भाषाई इकाइयों के स्तर पर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

पूर्वकालिक भाषाओं की ध्वनियों के आधार पर इस काल की भाषा की ध्वनियों में कुछ प्रमुख विकास इस प्रकार हुए हैं –

1. ''ऋ'' का लिखित रूप में प्रयोग होता है, किन्तु उच्चारण स्वर के रूप में न होकर ''रि'' के रूप में होता है। 'ऋ' का लिखित रूप में प्रयोग प्रायः तत्सम शब्दों में होता है; यथा– ऋषि, ऋतु आदि।
2. ऊष्म व्यंजन ध्वनियों–श, ष, स का लिखित रूप में पूर्ववत् प्रयोग होता है, किंतु उच्चारण में 'श' और 'स' दो ही ध्वनियाँ हैं। 'ष' ध्वनि का उच्चारण अब लगभग 'श' के ही समान होता है; यथा– कोष > 'कोश, ऋषि > 'रिशि, दोष > दोश। वर्तमान समय में कोष के स्थान पर 'कोश' शब्द का लिखित रूप भी प्रचलित हो गया है।
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में 'ड', 'ढ' के साथ 'ड़' और 'ढ़' मूर्धन्य ध्वनियों का विकास हो गया हैं इसके प्रयोग द्रष्टव्य हैं– सड़क, तड़क, पढ़ना, गढ़ना आदि। इन ध्वनियों के लिखित तथा उच्चारित रूपों का स्पष्ट प्रयोग होता है।
4. 'ज्ञ' संयुक्ताक्षर का शुद्ध उच्चारण 'ज्ञ' है, किंतु आज इसके उच्चारण बदलकर ग्य, ग्यँ, ज्यँ रूप हो गए हैं; यथा– ज्ञान > ग्याँन, ज्ञापन > ग्याँपन, ज्याँपन। इनमें 'ग्य' तथा ग्यँ के तो पर्याप्त प्रयोग मिलते हैं, जबकि ज्यँ का अत्यंत सीमित प्रयोग होता है।
5. विदेशी भाषाओं के प्रभाव के परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं में कुछ विदेशी ध्वनियों को स्थान मिल गया है। मुस्लिम प्रभाव वाली भाषाओं की क, ख, ग़, ज़, फ़् आदि ध्वनियाँ आ गई हैं, तो अंग्रेजी की आँ ध्वनि को भी स्थान मिल गया है।
6. शब्दों के अन्त का 'अ' स्वर प्रायः लुप्त हो जाने से उनकी स्थिति व्यंजनांत हो जाती है; यथा– आज > 'आज्, नाम > नाम्, तन > तन् आदि।
7. शब्दों के मध्य का 'अ' स्वर भी लुप्त होने लग गया है; यथा– किसका > किस्का, उसका > उस्का, उतना > उत्ना आदि।
8. संयुक्त व्यंजनो में क्षतिपूरक दीर्घाकरण नियम के अनुसार एक व्यंजन का लोप होता है और पूर्व ऊरव स्वर का दीर्घीकरण हो जाता है; यथा– कर्म > कम्म > काम, सप्त > सत्त > सात आदि।

(ख) शब्द संबंधी विशेषताएँ

1. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में शब्द वर्ग मुख्यतः तत्सम, तद्भव तथा देशज थे, किंतु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में विदेशी शब्द–वर्ग विशेष रूप से उभर कर सामने आया है। इस वर्ग में अरबी, फारसी, तुर्की तथा अंग्रेजी के शब्द मुख्य हैं। इन सभी भाषाओं के शब्द तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं; यथा –

   तत्सम शब्द–अगर, इमाम, डॅक्टर, टाइम, टी.वी. आदि।

   तद्भव शब्द –कर्ज, जादा, रेल, लालटेन, कप्तान आदि।

2. आधुनिक युग में मध्ययुग की अपेक्षा तत्सम शब्दों का प्रयोग कहीं अधिक होता है। मध्ययुग में तद्भव शब्दों की संख्या आज की अपेक्षा कहीं अधिक थी। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

3. आधुनिक युग में अनुकरणात्मक शब्दों के ध्वन्यात्मक तथा प्रति–ध्वन्यात्मक आदि वर्गों के शब्दों का प्रयोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक होने लगा है। आजकल इस वर्ग के शब्दों के बहुल प्रयोग होने के कारण एक–एक शब्द के लिए दो या दो से अधिक प्रतिध्वन्यात्मक शग्दों का प्रचलन हो गया है; यथा– चाय–शाय/वाय/चूय आदि।

4. इस वर्ग की भाषाओं में परिभाषिक शब्द पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुए हैं; यथा–अनहद, हठयोग, तदर्थ आदि।

5. आधुनिक युग में एक साथ अनेक भाषाओं का प्रयोग होने लगा है इसलिए इसमें संकर शब्दों के प्रयोग यत्र–तत्र मिल जाते हैं; यथा – रेलगाड़ी, बेकाम, कर्जदार आदि।

(ग) व्याकरण संबंधी विशेषताएँ

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के व्याकरण संबंधी तथ्यों में भी पर्याप्त भिन्नता आ गई है। इस संदर्भ की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) तथा मध्ययुगीन आर्य भाषाएँ नाम तथा धातु दोनों ही दृष्टियों से संयोगात्मक थीं, जबकि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ वियोगात्मक हो गई हैं। पूर्व की भाषाओं की संयोगावस्था तथा वर्तमान की वियोगात्मक की परसर्गों के नामरूपों के साथ प्रयोग तथा सहायक क्रियाओं के धातु रूपों के साथ प्रयोग में देख सकते हैं; यथा –

प्राचीन भा, आ. भाषा (संस्कृत)	आधुनिक भा. आ. भा. (हिंदी)
रामः रावणाय अलम्	राम रावण के लिए पर्याप्त है।
रमेशः विद्यालयं गच्छति	रमेश विद्यालय जाता है।
त्व, आगच्छ।	तुम जाओ/आ जाओ।

2. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) में स्त्रीलिंग, पुल्लिंग तथा नपुंसक तीनों लिंगों का प्रयोग होता था। अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग का ही प्रयोग मिलता है। तीन लिंगों का प्रयोग अब मात्र गुजराती तथा मराठी में मिलता है। लिंग–प्रयोग के संदर्भ में बंगला, उड़िया, असमी, बिहारी में सिमटती हुई लिंग–भेद स्थिति रेखांकन योग्य है।

3. संस्कृत में तीन वचनों का प्रयोग होता था, जो आज भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है। भाषा–विकास में

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में द्विवचन का प्रयोग समाप्त हो गया है। अब दो वचनों–एक वचन और बहुवचन के ही रूप रह गए हैं; यथा– बालक > लड़का; बालकौ, बालकाः > लड़के। वर्तमान समय की कुछ भाषाओं में एकवचन तथा बहुवचन शब्दों के लिए एक ही रूप का प्रयोग शुरू हो गया है। हिंदी की कुछ बोलियों में ''मैं'' के लिए भी 'हम' शब्द एकवचन तथा बहुवचन दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है। बहुवचन को स्पष्ट करने के लिए कभी–कभी 'हम' के साथ 'लोग' या 'सब' शब्द का प्रयोग कर 'हम लोग' या 'हमस ब' बना लिया जाता है।

4. संस्कृत में कारकों के तीनों वचनों में भिन्नता होने के कारण 24 में रूप बनते हैं। यथा– 'राम' शब्द प्रथमा–रामः रामौ रामाः सप्तमी–रामे रामयाः रामेषु आदि। आधुनिक भाषाओं में इसका सीमित प्रयोग भाषा की सरलता का आधार बन गया है। संस्कृत में क्रिया संबंधी काल तथा लकारों में भी बहुत विविधता रहती थी, जबकि आधुनिक भाषाओं में यह भिन्नता अपेक्षाकृत कहीं कम ही कर सरल हो गई है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ : विकास एवं परिचय

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिनन रूपों से हुआ है। इस संदर्भ में अपभ्रंश के सात रूप उल्लेखनीय हैं।

अपभ्रंश		आधुनिक भारतीय आर्य भषाएँ
1. शौरसेनी	:	पश्चिमी हिंदी, गुजराती, राजस्थानी
2. महाराष्टी	:	मराठी
3. मागधी	:	बिहारी, बंगला, उड़ीया, असमी
4. अर्ध मागधी	:	पूर्वी हिंदी
5. पैशाची	:	लहंदा, पंजाबी
6. ब्राचड़	:	सिन्धी
7. खस	:	पहाड़ी

पश्चिमी हिंदी : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसमें बांगरू (हरियाणवी) खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुन्देली पाँच मुख्य बोलियाँ मिलती हैं।

(क) बाँगरू : बाँगरू नाम एक क्षेत्र विशेष, जो ऊँची भूमि से संबंधित हो उसे 'बाँगरू' कहते हैं, के आधार पर हुआ है। इसे जाटँ, देसाड़ी और हरियाणवी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। आजकल इसे प्रायः हरियाणवी ही कहते हैं। हरियाणा में इसी बोली का प्रयोग होता है। हरियाणा का उद्‌भव भी हिन्दी की इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। हरियाणा का सीमा–निर्धारण भी इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। इस बोली के उद्‌भव के विषय में माना जाता है कि खड़ी–बोली पर पंजाबी तथा राजस्थान के प्रभाव के आधार पर यह रूप सामने आया है। इस बोली के लोक–साहित्य का समृद्ध भण्डार है। इस बोली की लिपि देवनागरी है। बाँगरू को निम्नलिखित मुख्य उप वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. बाँगरू : यह केन्द्रीय बोली है। इसका केन्द्र रोहतक है। इस बोली का प्रयोग दिल्ली के निकट तक होता है। इसमें क्रिया 'है' का 'सै' के रूप में प्रयोग होता है। णकार बहुला बोली होने के कारण 'न' ध्वनि प्रायः 'ण' के रूप में प्रयुक्त होती है। श, ष्ज्ञ, स का स्थान 'स' ध्वनि ने ले लिया है।

2. मेवाती : मेव–क्षेत्र विशेष के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इस बोली का प्रयोग झज्जर, गुड़गाँव, बावल तथा नूह के कुछ अंश में होता है। इसे ब्रज, राजस्थानी और बाँगरू का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इसमें 'ण' और 'ल' का बहुत प्रयोग मिलता है। एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए 'ए' के स्थान 'औ' का प्रयोग करते हैं; यथा– छोहरा > छोहरूं।

3. ब्रज : ब्रज क्षेत्र इसके नामकरण का आधार है। पलवल इसका केन्द्र है। इस बोली में ड और ल ध्वनि प्रायः 'र' हो जाती है।

   ल > र काला > कारा

   ड > र कीड़ी > कीरी

यह बोली ओकारान्त बहुला है –

   खाया > खायो

   गया > गयो

4. अहीरवाटी : रेवाड़ी और मेहन्द्रगढ़ का मध्य क्षेत्र इसका केन्द्र स्थल है। नारनौल से कोसली तक और दिल्ली से आस–पास तक इस बोली का प्रयोग होता है। इसे मेवाती, राजस्थानी बाँगरू और बागड़ी का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इसमें अकारान्त संज्ञा प्रायः ओकारान्त के रूप में मिलती है; यथा – था > था।

5. बागड़ी : बागड़ी संस्कृति से जुड़ी इस बोली का क्षेत्र भिवानी, हिसार, सिरसा के अतिरिक्त महेन्द्रगढ़ के कुछ भाग तक फैला है। इसकी लोप क्रिया बाँगरू के समान है; यथा अहीर > हीर, उठाना > ठाना, अनाज > नाज बहुवचन बनाने के लिए 'आँ' प्रत्यय का प्रयोग होता है; जैसे– बात > बाताँ।

6. कौरवी : उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर के अतिरिक्त हरियाणा के सोनीपत, पानीपत और करनाल तक इसका क्षेत्र फैला है। इसमें खड़ी बोली की प्रवृत्ति मिलती है; यथा– है, ना (पाना, खाना)। व्यंजनों में द्वित्वीकरण प्रवृत्ति है; यथा–लोप–प्रक्रिया रोचक है– अनार > नार, उतार > तार।

7. अम्बावली : इसका प्रयोग क्षेत्र अम्बाला, यमुनानगर तथा कुरूक्षेत्र तक विस्तृत है। अम्बावली और कौरवी में बहुत कुछ साम्य है। वैसे इस पर पंजाबी, पहाड़ी तथा बाँगरू इसमें महाप्राण ध्वनि बलाघात से अल्पप्राण हो जाती है; यथा– हाथ > हात, साथ > सात आदि लोप प्रक्रिया के समान है।

(ख) खड़ी–बोली : इस बोली का प्रयोग दिल्ली और पश्चिमी उत्तर–प्रदेश के कुछ जिलों में होता है। इसके दो रूप हैं एक साहित्यिक हिंदी, दूसरा उसी क्षेत्र की लोक–बोली। 'खड़ी–बोली' के नाम के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इसके खड़ेपन (खरेपन) अर्थात् शुद्धता के कारण इसे 'खड़ी–बोली' कहते हैं, तो कुछ विद्वानों का कहना है कि खड़ी पाई (आ की मात्रा 'ा') के बहुल प्रयोग (आना, जाना, खाना आदि) के कारण इसे खड़ी–बोली की संज्ञा दी जाती है। इसका क्षेत्र दिल्ली, मेरठ, मुजफ्जरनगर, सहारनपुर, देहरादून, बिजनौर, मुरादाबाद तथा रामपुर के अतिरिक्त इनके समीपस्थ जनपदों के आंशिक भागों तक फैला हुआ है। खड़ी–बोली में साहित्य की दो शैलियाँ हैं– पहली उर्दू प्रभावित, दूसरी तत्सम शब्दावली बहुला परिनिष्ठित शैली। भारत की राजभाषा, राष्ट्र–भाषा में भी इसी रूप को अपनाया गया है। वर्तमान समय में हिंदी की साहित्यिक रचना मुख्यतः इसी में हो रही है।

(ग) ब्रज–भाषा : ब्रज क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली बोली को ब्रज–भाषा कहते हैं। ब्रज–भाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी आदि जनपदों में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्युग में ब्रजभाषा को साहित्य

रचना का मुख्य आधार बनाया गया इसमें रचना करने वाले मुख्य साहित्यकार हैं– सूरदास, नन्ददास, बिहारी, केशव तथा घनानन्द आदि। यह भाषा माधुर्य गुण सम्पन्नता के लिए प्रसिद्ध है।

(घ) कन्नौजी : यह कन्नौज विशेष क्षेत्र की बोली है, जिसका प्रयोग इटावा, फरूखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई तथा कानपुर आदि जनपदों में होता है। कन्नौजी में लोक–साहित्य मिलता है, किन्तु साहित्यिक रचना का अभाव है।

(ङ) बुन्देली : बुन्देलखण्ड में बोली जाने के कारण इसे बुन्देली कहते हैं। इसका क्षेत्र झांसी, छतरपुर, ग्वालियर, जालौन, भोपाल, सागर आदि जनपदों तक फैला हुआ है। इसमें साहित्यिक रचना का अभाव है, किन्तु समृद्धशाली लोक साहित्य है।

2. गुजराती : गुजराती का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह गुजरात की प्रांत भाषा है। इस क्षेत्र में विदेशियों का आगमन विशेष रूप से होता है इसलिए इस पर विदेशी भाषा का प्रभाव पड़ा है। भाषा के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द का जन्म बारहवीं शताब्दी में गुजरात में हुआ था। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता का आज भी सम्माननीय स्थान है। गुजराती में पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसकी लिपि पहले देवनागरी थी, अब देवनागरी से विकसित लिपि गुजराती है।

3. राजस्थानी : यह राजस्थान क्षेत्र या प्रदेश की भाषा है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत चार प्रमुख बोलियाँ आती हैं– मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

(क) मेवाती : मेव जाति के क्षेत्र मेवाती के नाम पर यह बोली कहलाई है। यह अलवर के अतिरिक्त हरियाणा के गुड़गाँव जनपद के कुछ अंश में बोली जाती है। ब्रज–क्षेत्र से लगे होने के कारण इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ख) जयपुरी : यह राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, कोटा तथा बूंदी आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। इस क्षेत्र में ढँढाण कहने के आधार पर इसे ढुँढणी की भी संज्ञा दी जाती है। इसमें लोक–साहित्य मिलता है। इसमें दादू पंथियों का पर्याप्त साहित्य मिलता है।

(ग) मारवाड़ी : यह पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, अजमेर, जैसलमेर तथा बीकानेर आदि जनपदों में बोली जाती है। पुरानी मारवाड़ी को डिंगल कहते हैं। इसमें साहित्य तथा लोक–साहित्य दोनों ही रचा गया है। इसके प्रसिद्ध कवि हैं – नरपति नाल्ह और पृथ्वीराज। मध्यकाल में मीराबाई ने इसी भाषा में रचना की थी।

(घ) मालवी : राजस्थान के दक्षिणी पूर्व में स्थित मालवा क्षेत्र के नाम पर इसे मालवी कहते हैं। इन्दौर, उज्जैन तथा रतलाम आदि जनपद इसके क्षेत्र में आते हैं। इसमें सीमित साहित्य तथा पर्याप्त लोक–साहित्य मिलता है। चन्द्र–सखी इसकी प्रसिद्ध कवयित्री है।

4. मराठी : इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। महाराष्ट्र क्षेत्र या प्रदेश के नाम पर ही महाराष्ट्री और नाम पड़ा है विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने के कारण चार विभिन्न क्षेत्रों में इसके चार रूप उभर आए हैं। मराठी का अपना समृद्ध साहित्य है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, रामदास तथा तुकाराम आदि इसके प्रमुख कवि हैं। इसमें पर्याप्त संत साहित्य है। इसकी लिपि देवनागरी है।

5. बिहारी : इसका विकास मागधी से हुआ है। बिहारी क्षेत्र या प्रदेश में विकसित होने के कारण इसका नाम बिहारी रखा गया है। यह हिन्दी भाषा का ही रूप है। इसके अन्तर्गत भोजपुरी, मैथिली, मगही तीन प्रमुख बोलियाँ आती हैं।

(क) भोजपुरी : जनपदीय क्षेत्र भोजपूर इसका मुख्य केन्द्र होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। यह बिहार तथा उत्तर–प्रदेश के सीमावर्ती जिलों भोजपुर, राँची, सारन, चम्पार, मिर्जापुर, जौनपुर, बलिया,

गोरखपुर, बस्ती आदि में बोली जाती हैं। इसमें सीमित साहित्य, किन्तु समृद्ध लोकसाहित्य मिलता है।

(ख) मैथिली : जनपदीय क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मैथिली नाम दिया गया है। इसके क्षेत्र में दरभंगा, सहर और मुजफ्फरपुर तथा भागलपुर जनपद आते हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसे सम्पन्न भाषा मान सकते हैं। इस भाषा को लोक–साहित्य भी अपने सरस रूप के लिए प्रसिद्ध है। मैथिली कोकिल विद्यापति ने इसी भाषा में अपनी अधिकांश कृतियों का सृजन किया है।

(ग) मगही : ''मागधी'' से विकसित होकर मगही शब्द बना है। 'मागध' क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मागधी या मगाही नाम दिया गया है। गया जनपद के अतिरिक्त पटना, भागलपुर, हजारीबाग तथा मुंगेर आदि जनपदांशों में भी यही बोली जाती है।

5. बंगला : इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। बंगला इसका क्षेत्र है। गाँव तथा नगर की बंगला में भिन्नता है। इसी प्रकार पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र की बंगला में भी भिन्नता है। पूर्वी बंगला का मुख्य केन्द्र ढाका है, जो अब बंगलादेश में है। हुगली नदी के निकट क्षेत्र की नगरीय बंगला ही साहित्यक भाषा बन गई है। परंपरागत तत्सम शब्दों की संख्या सर्वाधिक रूप में बंगला में ही मिलती है। इसकी अनेक विशेषताओं में ''अ'' तथा ''स'' का ''श'' उच्चारण प्रसिद्ध है। बंगला साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न भाषा है। रविन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र, बंकिमचन्द्र, चण्डीदास तथा विजयगुप्त आदि इस भाषा के प्रमुख साहित्यकार हैं। प्रसिद्ध भाषा–शास्त्री 'बंगाला' का उद्भव एवं विकास के लेखक डॉ0 सुनीतिकुमार चटर्जी का नाम भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसकी लिपि बंगला है, जो पुरानी नागरी से विकसित हुई है। देवनागरी और बंगला लिपि में पर्याप्त साम्य है।

7. उड़िया : उड़िया का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। उड़िसा प्रदेश की भाषा होने के कारण इसे उड़िया कहा जाता है। उड़ीसा को 'उत्काल' नाम से संबोधित किया जाता था, इसलिए इसे 'उत्कली' भी कहते हैं। उड़िया का शुद्ध रूप ओड़िया है इसलिए इसे ''ओड़ी'' भी कहते हैं। बंगला तथा उड़िया भाषा में पर्याप्त समानता है। इस भाषा पर मराठी तथा तेलगू का काफी प्रभाव है, क्योंकि यह क्षेत्र एक लम्बे समय तक ऐसे भाषा–भाषी राज्याओं के शासन में रहा है। इसमें परम्परागत तत्सम शब्द पर्याप्त रूप से कृष्ण भक्तिपरक रचनाएँ मिलती हैं। इसकी लिपि उड़िया है, पुरानी नागरी से विकसित हुई है।

8. असमी : मागधी अपभ्रंश से विकसित भाषाओं में असमी एक भाषा है। असमी, आसामी, असमीया, असामी आदि नामों से जानी जाने वाली यह भाषा आसाम या असम प्रान्त की भाषा है। इसमें तथा बंगला में बहुत कुछ साम्य है। यह साहित्य सम्पन्न भाषा है। इसके प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक ग्रंथों का विशेष महत्व है। इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं – शंकरदेव, महादेव तथा सरस्वती आदि। इसकी लिपि बंगला है, किन्तु इसमें कुछ एक ध्वनि चिह्न सुधार लिए गए हैं।

9. पूर्वी–हिंदी : पूर्वी हिंदी का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र के पूर्व में होने से इसी पूर्वी हिन्दी का नाम दिया गया है। इसकी कुछ विशेषताएँ पश्चिमी हिन्दी से मिलती हैं, जो कुछ बिहारी वर्ग की भाषाओं से। इसे तीन बोलियों–अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ में विभक्त करते हैं।

(क) अवधी : यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है। अवध (अयोधा) क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे अवधी कहते हैं। प्राचीन काल में अवध को ''कोशल'' भी कहा जाता था, इसलिए इसे कोसली भी कहते हैं। विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं। इसके क्षेत्र इस प्रकार हैं –

1. पूर्वी अवधी : फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, मिर्जापुर गोंडा।

2. केन्द्रीय अवधी : रायबरेली, बाराबंकी।

3. पश्चिमी अवधि : लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फतेहपुर, खीरीलखीमपुर। अवधी में साहित्य तथा लोक–साहित्य की परम समृ0 परम्परा है। ठेठ तथा साहित्यिक अवधी में उन्नत साहित्य की रचना हुई है। मुल्लादाउद, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, तुलसीदास आदि अवधी के प्रमुख कवि हैं।

(ख) बघेली : बघेल खण्ड में बोली जाने के कारण इसे बघेली नाम दिया गया है। इसे बघेलखण्डी भी कहते हैं। इसका केन्द्र रीवाँ है। रीवाँ के आसपास शहडोल, सतना आदि में भी इसका प्रयोग होता है। इसमें लोक–साहित्य मिलता है।

(ग) छत्तीसगढ़ी : छत्तीसगढ़ी के नाम पर इसे छत्तीसगढ़ी कहते हैं। रायपुर, विलासपुर, खैरागढ़ तथा कांके आदि तक इसका क्षेत्र माना गया है। इसमें पर्याप्त लोक–साहित्य मिलता है।

10. लहँदा : इसका विकास पैशाची अपभ्रंश से हुआ है। लहँदा का अर्थ है पश्चिमी। अब वह पश्चिमी पंजाब जो पाकिस्तान है, की भाषा है। यह पश्चिमी, पंजाबी, जटकी तथा 'हिन्दकी' के नाम से भी जानी जाती है। इस पर पंजाबी तथा सिन्धी भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसकी कई बोलियाँ विकसित हो गई हैं। इसकी लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसे गुरूमुखी या फारसी में लिखते हैं। इसमें उन्नत या विकसित साहित्य का अभाव है।

11. पंजाबी : पैशाची अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। यह पंजाब प्रांत की भाषा है। पंजाब क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसका नाम पंजाबी हुआ है। यह सिक्ख–साहित्य की मुख्य भाषा हैं इस पर दरद का प्रभाव है। इस भाषा का केन्द्र अमृतसर है। पंजाबी भाषा की विभिन्न बोलियों में अधिक अंतर नहीं है। इसमें समृ0 लोक–साहित्य है। वर्तमान समय में इससे संबंधित साहित्यकार साहित्यिक रचना में गतिशील हैं। उसकी लिपि गुरूमुखी है।

12. सिन्धी : इसका विकास ब्राचड़ या ब्राचट अपभ्रंश से हुआ है। सिन्ध क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे सिन्धी कहा गया है। सिन्ध क्षेत्र में सिन्धु नदी के तटीय भागों में यह भाषा बोली जाती है। इसकी कई बोलियाँ हैं, जिनमें बिचौली मुख्य है। इसका साहित्य अत्यंत सीमित है। सिन्धी भाषा की लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसके लेखन में फारसी लिपि का भी प्रयोग किया जाता है।

13. पहाड़ी : इसका विकास 'खस' अपभ्रंश से हुआ है। इसका क्षेत्र हिमालय के निकटवर्ती भाग नेपाल से लेकर शिमला तक फैला है। कई बोलियों वाली इस भाषा को तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं –

(क) पश्चिमी पहाड़ी : इसमें शिमला के आस–पास चम्बाली, कुल्लई आदि बोलियाँ आती हैं।

(ख) मध्य पहाड़ी : इसमें कुमायूं तथा गढ़वाल का भाग आता है। नैनीताल तथा अल्मोड़ा में बोली जाने वाली कुमायूनी तथा गढ़वाल, मंसूरी में बोली जाने वाली गढ़वाली बोलियाँ मुख्य हैं।

(ग) पूर्वी पहाड़ी : काठमाण्डू तथा नेपाल की घाटी में यह भाषा बोली जाती है। पहाड़ी बोलियों का समृद्ध लोक–साहित्य है। इसकी लिपि मुख्यतः देवनागरी है।

(घ) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण : विश्व के समस्त भाषा–कुलों में भारतीय भाषाकुल का और इसमें भारतीय आर्य भाषाओं का विशेष महत्व है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से मध्ययुगीन भारतीय, आर्य भाषाओं का उद्‌भव और उससे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। वर्तमान समय की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में पर्याप्त विकास हुआ है। इसकी विभिन्न शाखाओं में भरपूर साहित्य रचना हो रही है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस परिवार की विभिन्न भाषाओं का वगीकरण किया गया है।

वर्गीकरण प्रस्तुत करने वाले मुख्य भाषा–वैज्ञानिक हैं – हार्नलें, बेबर, ग्रियर्सन, डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, श्री सीताराम चतुर्वेदी, डॉ0 भोलानाथ तिवारी आदि।

1. हार्नले द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के संबंध में प्रथम नाम हार्नले का आता है। उन्होंने आर्य के विषय में एक सैद्धांतिक तथ्य साने रखा है कि आर्य बाहर से भारत में दो बार आए हैं। इनके भारत प्रथम आगमन का मार्ग सिन्धु पार कर पंजाब से रहा है। दूसरी बार इनका आगमन कश्मीर की ओर से हुआ है। दूसरी बार आर्यों के आगमन पर पूर्वकाल में आए आर्य देश के कोने–कोने में फैल गए। दूसरी बार आए आर्य देश के मध्य भाग में बस गए। इस प्रकार हार्नले ने आर्यों के बहिरंग तथा अंतरंग वर्गों के आधार पर ही उनकी भाषाओं को भी वर्गीकृत किया है। इस आधार पर हार्नले ने अंतरंग और बहिरंग दो वर्ग बनाए।

   हार्नले ने ''Comparative Grammer of the Gaudian Languages" में एक भिन्न वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने विभिन्न दिशाओं के आधार पर भाषा–सीमा बनाने का प्रयत्न किया है। ये भाषा वर्ग हैं –

   1. पूर्वी गौडियन : पूर्वी हिन्दी (बिहारी सहित), बंगला, उड़ीसा, असमी।
   2. पश्चिमी गौडियन : पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी सहित), गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।
   3. उत्तरी गौडियन : पहाड़ी (गढ़वाली, नेपाली आदि)
   4. दक्षिणी गौडियन : मराठी।

   इस प्रकार हार्नले द्वारा प्रस्तुत किया गया आधुनिक भारतीय भाषाओं का आदि वर्गीकरण भले ही विस्तृत और पूर्ण वैज्ञानिक नहीं सिद्ध हो सका है, किन्तु इसका अपना विशेष महत्व है; इस वर्गीकरण की मुख्य विशेषता यह है कि परिवर्ती वर्गीकरण अल्पाधिक रूप में इस पर आधारित है।

2. ग्रियर्सन : द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का समुचित सर्वेक्षण करके उनकी विशेषताओं के आधार पर वर्गीकरण करने का यत्न किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए दो वर्गीकरण इस प्रकार हैं –

(क) प्रथम वर्गीकरण : ग्रियर्सन ने हार्नल के बाह्य और आन्तरिक सिद्धांत वर्गीकरण को आंशिक आधार बनाकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया है। उन्होंने इस वर्गीकरण में समस्त भाषाओं को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया है। उनके वर्गीकरण को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं।

1. बाहरी उपशाखा : (क) पश्चिमोत्तर वर्ग : लहँदा, सिन्धी।
   (ख) दक्षिणी वर्ग : मराठी।
   (ग) पूर्वी वर्ग : उड़िया, बंगला, असमी, बिहारी।
2. मध्यवर्ती उपशाखा मध्यवर्ती वर्ग : पूर्वी हिन्दी।
3. भीतरी उपशाखा : (क) केन्द्रीय वर्ग : पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी (भीली, खानदेशी)
   (ख) पहाड़ी वर्ग : नेपाली (पूर्वी पहाड़ी), मध्य पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी।

ग्रियर्सन के मतानुसार विभिन्न उपशाखाओं में विभक्त भाषाओं की ध्वनियों, शब्दों तथा उनके व्याकरणिक रूपों में पर्याप्त भिन्नता है। उन्हीं आधारों पर उन्होंने विभिन्न भाषाओं को उपशाखाओं में विभक्त किया है। डॉ0 सुनीति

कुमार चटर्जी और डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने इस वर्गीकरण की विभिन्न दृष्टियों से आलोचना की है। इस वर्गीकरण के आधार और विशेषताओं पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण से इस प्रकार विचार कर सकते हैं।

(क) ध्वन्यात्मक विशेषताएँ – ग्रियर्सन ने बाहरी उपशाखा की कुछ ऐसी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ, रेखांकित की हैं, जो भीतरी उपशाखा में नहीं हैं; यथा –

1. उनके अनुसार बाहरी उपशाखा की भाषाओं में इ, उ तथा ए स्वरांत शब्दों की उक्त ध्वनियों का लोप नहीं होता है। यदि भीतरी उपशाखा की भाषाओं की ऐसी शब्दान्त ध्वनियों के विषय में देखें तो पाएंगे कि उनका लोप वहाँ भी नहीं होता; यथा–पति, प्शु, मिले आदि।
2. इस शाखा में इ ध्वनि ए और उ ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं। ऐसा ध्वनि–परिवर्तन बाहरी शाखा की भाषाओं में ही नहीं, भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलता है; यथा– इ > ए : मिलना > मेल, तिल > तेल, उ > ओ : सुखाना > सोखना, मुग्ध > मोह, तुही > तोही।
3. उक्त शाखाओं की भाषाओं की ''इ'' तथा ''उ'' ध्वनि आपस में एक–दूसरे के प्रयोग स्थान पर युक्त होती हैं। भीतरी शाखा की भाषाओं में भी यदा–करा ऐसे योग मिल जाते हैं; यथा– इ–उ : बिन्दु, बुन्द।
4. ग्रियर्सन के अनुसार ''ड'' और ''ल'' के स्थान पर 'र' का योग होता है। ऐसी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ भीतरी शाखा की भाषाओं में भी यदा–कदा मिल जाती हैं; यथा– ड > र : किवाड़ > किवार, पड़ गए > पर गए, सड़क > सरक ल > र : बल > बर, बिजली > बिजुरी, तले > तरे यह प्रवृत्ति अवधी तथा ब्रज में पर्याप्त रूप से मिलने के साथ खड़ी बोली में भी अल्पाधिक रूप से मिल जाती है।
5. उनकी मान्यता है कि बाहरी शाखा की भाषाओं में द तथा ड ध्वनियाँ आपस में एक–दूसरे के स्थान पर युक्त होती हैं। ऐसी प्रवृत्ति तो भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलती है; यथा– द > ड : दशन > डसना, दंड > डंड, ड्योढी > देहली।
6. बाहरी शाखाओं की भाषाओं में 'म्ब' से ''म'' ध्वनि का विकास माना गया है, साथ ही यह भी संकेत किया गया है कि भीतरी शाखा में 'म्ब' का 'ब' रूप होता है। दोनों उपशाखाओं के शब्दों की ध्वनियों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि इसके विपरीत वृत्ति भी मिलती है। पश्चिमी तथा पूर्वी हिंदी में निम्ब से नीम, निबोली, जम्बुक से जामुन शब्द रूप हो जाते हैं, तो बंगला में निम्बुक से लेबू रूप हो जाता है।
7. उनके अनुसार बाहरी शाखा की भाषाओं में 'स' ध्वनि श, ख, या ह के रूप में मिलती है। यदि बाहरी शाखा की पूर्वी वर्ग की बंगला तथा दक्षिणी वर्ग की मराठी भाषाओं में देखें तो यह ध्वनि ''श'' के रूप में प्रयुक्त होती है। बंगला की पूर्वी बोली तथा असमी में यह निर्बल ध्वनि 'ख' के रूप में युक्त होी है। पश्चिमोत्तर वर्ग लहँदा तथा सिन्धी में यही ध्वनि 'ह' के रूप में मिलती है। ग्रियर्सन द्वारा संकेत की गई उपशाखा की यह वृत्ति भीतरी उपशाखा में भी मिलती है, यथा–द्वादश > बारह, केसरी > केहरी, पंच–सप्तति > पचहतर, कोस > कोह।
8. ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी शाखा की भाषाओं की महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण हो जाती हैं। यदि भीतरी शाखाओं की भाषाओं के विषय में चिन्तन करें तो यह परिवर्तन इसमें भी मिलता है; यथा– भंगिनी > बहन या बहिन, ईठा (प्राकृत) (इष्टक) > ईंट।
9. उनके अनुसार संयुक्त व्यंजन के मध्य स्थिति अर्थ–व्यंजन का लोप हो जाता है। क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियमानुसार पूर्व वर्ण का रूप दीर्घ हो जाता है। भीतरी शाखा की भाषाओं में भी ऐसे ध्वनि–परिवर्तन मिल

जाते हैं; यथा– कर्म > काम, सप्त > सात, हस्त > हाथ, चर्म > चाम आदि।

10. इसमें अंतरस्थ 'र' का लोप हो जाता है। यह वृत्ति भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलती है; यथा– ओर > औ, पर > पै।
11. इसमें ही ''ए'' का ''ऐ'' और 'आ' का 'औ' होने की बाबत कही गई है, भीतरी शाखा की भाषाओं के उच्चारण में यदा–कदा ऐसे परिवर्तन मिल जाते हैं; यथा– सेमैस्टर > सैमेस्टर।
12. बाहरी शाखा की भाषाओं में 'द' और 'घ' के 'ज' और 'झ' होने की बात कही गई है। ये परिवर्तन भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिल जाते हैं।

(ख) व्याकरणिक विशेषताएँ

1. ग्रियर्सन ने 'ई' त्यय के योग के आधार पर बाहरी शाखा की भाषाओं को अलग किया है, किंतु भीतरी शाखा की भाषाओं में ऐसी वृति संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि शब्दों के स्त्रीलिंग बनाने में मिलती है; यथा –

   संज्ञा : लड़का > लड़की, मामा > मामी, दादा > दादी।

   विशेषण : अच्छा > अच्छी, गन्दा > गन्दी, पीला > पीली।

   क्रिया : जाता > जाती, रोता > रोती, गाता है > गाती है। क्रिया : जाता–जाती रोता, गाता है –गाती है।

2. उन्होंने बाहरी शाखा की भाषाओं के विशेषण शब्दों में 'ला' तथा प्रयोग की बात कही है, जो भीतरी भाषाओं में मिलती है; यथा –

   पुल्लिंग विशेषण : गठीली, रंगीली, खर्चीला, कटीला।

   स्त्रीलिंग विशेषण : गठीली, रंगीली, खर्चीली, कँटीली।

3. ग्रियर्सन के अनुसार संस्कृत संयोगात्मक भाषा थी। उसके पश्चात की भाषाएँ क्रमशः वियोगात्मक होती गई हैं। बाहरी शाखा की भाषाओं में आगे के विकास की बात कही ई अर्थात् उसमें पुनः संयोगात्मक रूप विकसित हो गए हैं। 'राम की किताब' का बंगला रूपान्तरा 'रामेर बाई होता है। इसके विपरीत भीतरी शाखा को भाषाओं के कारण रूपों के संयोगात्मक प्रयोग देख सकते हैं; यथा– अपने काम से मतलब है। तुमसे भी कहूँ। उनकी बात है।
4. क्रिया शब्दों तथा धातु रूपों में समानता की बात कही गई है। यह तथ्य न तो बाहरी शाखा की भाषाओं में पूर्णतः मिलता है और न ही भीतरी शाखा की भाषओं में दोनों ही शाखाओं की भाषाओं में मिलने वाली ऐसी प्रवृत्ति को भेदक आधार रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।
5. भूतकालिक क्रिया का रूप कर्त्ता के अनुरूप प्रयुक्त होता है। यह प्रवृत्ति बाहरी शाखा की भाषाओं के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी में भी मिलती है; यथा –

   हम इमलि खायेन – (मैंने इमली खाई)

   हम आम खायेन – (मैंने आम खाया)

   बाहरी शाखा की भाषाओं में यह प्रवृत्ति अकर्मक क्रिया के सन्दर्भ में ही मिलती है।

6. ग्रियर्सन के अनुसार भूतकालिक क्रिया के साथ आने वाला सर्वनाम क्रिया के साथ अन्तर्भूत होता है। बाहरी

शाखा की सभी भाषाओं में यह प्रक्रिया नहीं मिलती है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट भेदक आधार नहीं है।

7. बाहरी शाखा की भाषाओं के सभी वर्गों के शब्दों को सप्रत्यय माना है। यदि भीतरी शाखा की भाषाओं के शब्दों पर विचार करें तो ऐसी ही प्रवृत्ति इसमें है; यथा– मैं (मैंने), तै (तूने) बालहि (बालक)।

(ग) शब्द विशेषताएँ : ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी शाखा की सभी भाषाओं के शब्दों में पर्याप्त समानता है। यदि तुलनात्मक दृष्टिकोण से भीतरी तथा बाहरी शाखाओं की विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करें, तो पाएंगे कि बंगला–लहँदा या बंगला–मराठी की अपेक्षा कहीं अधिक समता बंगला तथा हिन्दी में मिलती है। बिहारी तो वास्तव में हिन्दी का एक रूप है इस प्रकार बाहरी तथा भीतरी शाखाओं की भाषाओं के विभन्न शब्द वर्गों और उनकी रचना में पर्याप्त समानता होने से वर्गीकरण का यह आधार भी वैज्ञानिक नहीं सिद्ध होता है।

(घ) वंशानुगत विशेषताएँ : आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी तथा भीतरी उपशाखा आधारित वर्गीकरण को पुष्ट आधार देने के लिए परिवार को दो उपवर्गों में विभक्त किया गया है। इस मन्तव्य के अनुसार बाहरी क्षेत्र के आर्य एक जाति के थे और भीतरी आर्य दूसरी जाति के थे। इस प्रकार भिन्न जाति के होने के कारण उनकी भाषा भी भिन्न बताई गई है। इस विचार के अनुसार बंगला, सिन्ध तथा महाराष्ट्र क्षेत्र के आर्य उत्तर–प्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान आदि क्षेत्रों के आर्य दूसरी जाति के थे, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह मन्तव्य गलत सिद्ध होता है। इतिहास के अनुसार आर्य ही एक परिवार के थे।

द्वितीय वर्गीकरण : ग्रियर्सन ने बाद में हिन्दी को विशेष महत्व देते हुए एक नए ढ़ंग का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है इस वर्गीकरण में विभिन्न भाषाओं की समान विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उनके इस वर्गीकरण को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं।

(क) मध्य देशीय भाषाएँ – पश्चिमी हिन्दी

(ख) अन्तर्वत भाषाएँ – पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (पश्चिमी हिन्दी से अधिक समता रखने वाली भाषाएँ); पूर्वी हिन्दी (बाहरी भाषाओं से समता रखने वाली भाषाएँ)।

(ग) बाहरी भाषाएँ – पश्चिमोत्तरी भाषाएँ– लहँदा, सिन्धी, दक्षिणी भाषाएँ– मराठी, पूर्वी भाषाएँ– बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी।

डॉ0 ग्रियर्सन के द्वारा किए गए दोनों ही वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक कोटि में नहीं आते हैं, क्योंकि प्रथम वर्गीकरण की दोनों उपशाखाओं की ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक तथा शब्दगत विशेषताओं में स्पष्ट भेदक रेखा खींचना संभव नहीं है। आर्यों को बाहरी तथा भीतरी दो जातियों में विभक्त करना इतिहास के तथ्यों के विपरीत है। इनके द्वारा प्रस्तुत द्वितीय वर्गीकरण अधिक उपयोगी तथा अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अब तक हुए वर्गीकरण में ग्रियर्सन का वर्गीकरण निश्चय ही महत्वपूर्ण है। इस वर्गीकरण के माध्यम से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विभिन्न भाषाई विशेषताओं के अध्ययन का अवसर मिल जाता है।

(ङ) डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : डॉ0 चटर्जी ने ओरिजन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑफ बंगाली लैंगवेज (ODBL) में डॉ0 ग्रियर्सन द्वारा किए गए आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी और भीतरी वर्गीकरण के ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक तथा शब्दगत आधारों की आलोचना की है। इस प्रकार उदाहरण पुष्ट आलोचना करने से जहाँ ग्रियर्सन के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता तथा उसकी सीमा स्पष्ट होती है, वहीं नए वर्गीकरण का आधार बनता है। इसी पुस्तक में उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की आपसी समीपता तथा पारस्परिक विशेषताओं को महत्व देते हुए उनको वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण में उन्होंने वैदिक काल से वर्तमान समय तक मध्यक्षेत्र की

भाषा की महत्ता–संकेत करते हुए उसी भाषा को वर्गीकरण का आधार बनाया है। वर्तमान समय में पश्चिमी हिन्दी उसी महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में सामने आती है। इस प्रकार सर्वप्रथम मध्य प्रदेश भाषा वर्ग बनाकर उसमें पश्चिमी हिन्दी रखी गई। पश्चिमी हिन्दी के पश्चिम क्षेत्र की भाषाओं–गुजराती तथा राजस्थानी को समता के कारण ये एक साथ पश्चिमी भाषा–वर्ग में रखी गई हैं। समता की दृष्टि से सिन्धी तथा लहँदा के साथ ही पंजाबी भाषा भी एक वर्ग में रखी गई है। इस वर्गीकरण में भी मराठी एक अलग दक्षिणी वर्ग में रखी गई है। पूर्वी वर्ग में आने वाली बिहारी, बंगला, असमी तथा उड़िया के साथ ही पूर्वी हिन्दी रखी गई है; यथा –

(क) उत्तरी (उदीच्य) वर्ग –

1. सिन्धी
2. लहँदा।
3. पंजाबी।

(ख) पश्चिमी (प्रतीच्य) वर्ग –

4. गुजराती।
5. राजस्थानी।

(ग) मध्य (मध्यदेशीय) वर्ग –

6. पश्चिमी हिन्दी।

(घ) पूर्वी (प्राच्य) वर्ग –

7. पूर्वी हिन्दी
8. बिहारी।
9. बंगला।
10. असमी।
11. उड़िया।

(ङ) दक्षिणी (दक्षिणात्य) वर्ग –

12. मराठी।

इस वर्गीकरण की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(क) डॉ0 ग्रियर्सन, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा आदि ने भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में 'पहाड़ी' भाषा को महत्व देते हुए मध्य शाखा के उपवर्ग तथा उत्तरी भाषा के रूप में स्थान दिया है। डॉ0 चटर्जी के वर्गीकरण में 'पहाड़ी' का नाम न आने से उनके द्वारा उस भाषा को महत्व न देने की बात स्पष्ट होती है। उन्होंने पहाड़ी को दरद तथा राजस्थानी भाषा को सम्मिलित रूप माना है।

(ख) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के संदर्भ में ग्रियर्सन तथा कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिकों ने भीली तथा खानदेशी को स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार कर एक वर्ग में स्थान दिए हैं। डॉ0 चटर्जी ने इन दोनों

ही भाषाओं को स्वतंत्र रूप में स्वीकार नहीं किया है। इस कारण इन्हें वर्गीकरण में स्थान नहीं मिल सका है।

(ग) यह वर्गीकरण विभिन्न भाषाओं की समान विशेषताओं के आधार पर किया गया है, इसलिए सुविधाजनक है। इस वर्गीकरण के विषय में डॉ0 सरयू प्रसाद अग्रवाल ने भाषा विज्ञान और हिंदी (द्वितीय संस्करण) के पृष्ट 138 पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है –''डॉ0 अग्रवाल ने इस वर्गीकरण की सरलता को स्पष्ट करते हुए आगे कहा है– 'सुविधा की दृष्टि से श्रेयस्कर है।'

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में डॉ0 चटर्जी के वर्गीकरण का अपना महत्व है।

अध्याय 2

हिंदी का विकासात्मक स्वरूप

2.1 हिंदी की उपभाषाएँ एवं बोलियाँ

भारत का उत्तर और मध्य देश बहुत समय पहले से हिंदी–क्षेत्र नाम से जाना जाता है। हिंदी–प्रयोग क्षेत्र के विस्तृत होने के कारण अध्ययन सुविधा के लिए उसे विविध वर्गों में विभक्त किया गया है। जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने हिंदी के मुख्य दो उपवर्ग बनाए हैं – (1) पश्चिमी हिंदी, (2) पूर्वी हिंदी। उन्होंने बिहारी को अलग भाषा के रूप में व्यवस्थित किया है। हिंदी भाषा के ऐतिहासिक और स्त्रोत–आधार पर अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि अपभ्रंश की शौरसेनी, अर्धमागधी, मागधी और खस शाखाओं से हिंदी का विकास विविध क्षेत्र में हुआ है। इसे मुख्यतः पाँच उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. पश्चिमी हिंदी, 2. पूर्वी हिंदी, 3. बिहारी हिंदी, 4. राजस्थानी हिंदी, 5. पहाड़ी हिंदी।

1. पश्चिमी हिंदी

इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत में मध्य भारत के कुछ अंश तक फैला है। अर्थात् उत्तरांचल प्रदेश के हरिद्वार, हरियाणा से लेकर उत्तर प्रदेश के कानपुर के पश्चिमी भाग तक है। आगरा से लेकर मध्य क्षेत्र ग्वालियर और भोपाल तक है। क्षेत्र–विस्तार के कारण पश्चिमी हिंदी में पर्याप्त विविधता दिखाई देती है। इसमें मुख्यतः पाँच बोलियों के रूप मिलते हैं।

(क) कौरवी – प्राचीनकाल में इस क्षेत्र को कुरू प्रदेश कहते थे। इसी आधार पर इसका कौरवी नाम पड़ा है। इसे पहले खड़ी–बोली नाम भी दिया जाता था। अब खड़ी–बोली हिंदी का पर्याय रूप है। खड़ी–बोली नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि खड़ापन (खरेपन) शुद्धता के आधार पर है, तो कुछ भाषाविदों का कहना है कि खड़ी–पाई (आ की मात्रा 'ा') के प्रयोग (आना, खाना, चलना, हँसना) आधार पर खड़ी–बोली नाम पड़ा है। वर्तमान समय में इसका प्रयोग दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फर नगर, रामपुर, बिजनौर, सहारनपुर (उ. प्र.) हरिद्वार, देहरादून (उत्तरांचल), यमुना नगर, करनाल, पानीपत (हरियाणा का यमुना तटीय भाग) में होता है।

कौरवी की विशेषताएँ :

1. क्रिया रूप अकारांत होता है; यथा– आना, खाना, दौड़ना, फैलना और खींचना आदि।
2. कर्ता परसर्ग 'ने' का प्रयोग स्पष्ट रूप में होता है।
3. कहीं–कहीं पर 'न' के स्थान पर 'ण' ध्वनि का प्रयोग मिलता है।
4. इसमें तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है।
5. अरबी और फारसी के शब्द यत्र–तत्र मिलते हैं।

वर्तमान हिंदी का स्वरूप इसी बोली को आधार मान कर विकसित हुआ है। हिंदी को राजभाषा, राष्ट्रभाषा और जनभाषा का रूप देने में इस बोली की विशेष भूमिका है।

(ख) ब्रजभाषा : ब्रजभाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। हिंदी साहित्य के मध्यकाल अर्थात् भक्ति और रीतिकाल में इस भाषा में पर्याप्त साहित्य रचा गया है। उस काल में अवधी और ब्रज में ही मुख्यतः रचना होती थी। रीतिकाल ब्रजभाषा ही रचना की आधार भाषा थी। इसीलिए इसे हिंदी के रूप में स्वीकृति मिली थी। विशेष महत्व मिलने के कारण ही 'ब्रज बोली' कहना अनुकूल नहीं लगत वरन् 'ब्रजभाषा' कहना अच्छा लगता है। इसका केन्द्र स्थल आगरा और मथुरा है। वैसे इसका प्रयोग अलीगढ़ और धौलपुर तक होता है। हरियाणा के गुड़गाँव और फरीदाबाद के कुछ अंश और मध्य प्रदेश के भरतपुर और ग्वालियर के कुछ भाग में ब्रज का प्रयोग होता है। इसकी कुछ विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं –

1. पद–रचना में ओकार और औकार बहुला रूप है; जैसे – खाया > खायौ > गया > गयो या गयौ।
2. बहुवचन में 'न' का प्रयोग होता है; यथा– लोग > लागन; बात > बातन।
3. 'उ' विपर्यय रूप मिलता है; जैसे – कुछ > कछु।
4. संबंध कारकों के विशेष रूप मिलते हैं – मेरो, तेरो, हमारो, तिहारो आदि।
5. तद्भव शब्दों की बहुलता है।
6. वर्तमान समय में अरबी, फारसी के साथ अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। इसके प्रमुख कवि हैं – सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, केशव, बिहारी, भूषण और रसखान आदि। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज की बलवती भूमिका रही है।

(ग) हरियाणवी – इसे बाँगरू या हरियानी नाम भी दिया जाता है। किन्तु जब हरियाणवी ही सर्वप्रचलित और मान्य हो गया है। हरियाणा प्रदेश का उद्भव और नामकरण बोली के आधार पर हुआ है। हरियाणवी हरियाणा के सभी जिलों में बोली जाती है। हरियाणवी और कौरवी में पर्याप्त समानता है। हरियाणा की सीमा उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब और राजस्थान से लगी हुई है। इस प्रकार इसके सीमावर्ती क्षेत्रों में निकट की बोली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस प्रभाव के साथ हरियाणवी विशेष चर्चा हेतु इसे सात उपवर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

1. केन्द्रीय हरियाणवी –इसका केन्द्र रोहतक है। सामान्य उदाहरण देने हेतु प्रायः इसी रूप का उल्लेख किया जाता है। 'णकार' बहुला रूप होने के कारा 'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' का प्रयोग किया जाता है। 'ल' के स्थान पर 'ळ' विशेष ध्वनि सुनाई देती है; यथा– बालक > बाळक क्रिया 'है' के स्थान पर 'सै' का प्रयोग होता –
2. ब्रज हरियाणवी – फरीदाबाद और मथुरा के मध्य के हरियाणा के क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। ब्रज का रंग स्पष्ट दिखाई देता है। इसमें 'ओ' ध्वनियों की बहुलता है; यथा– खायौ, खायोः गयो, गयो; नाच्यो, नाच्यौ आदि। 'ल' के स्थान पर 'र' का प्रयोग मिलता है– काला > कारा, बिजली > बिजुरी आदि।
3. मेवाती हरियाणवी : मेव क्षेत्र के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इसमें झज्जर, गुड़गाँव, बावल और नूह का क्षेत्र आता है। इसमें, हरियाणवी, ब्रज और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें 'ण' और 'ल' ध्वनि की बहुलता है।
4. अहीरवाटी हरियाणवी – रेवाड़ी और महेन्द्रगढ़ का क्षेत्र अहीरवाल है। इसी आधार पर इसका नामकरण हुआ है। नारनौल से कोसली तक इसका स्वरूप मिलता है। इसमें मेवाती, राजस्थानी (बागड़ी) का प्रभाव दिखाई देता है। इसमें ओकार बहुल रूप मिलता है; यथा– था > थो।
5. बागड़ी हरियाणवी – इसका क्षेत्र हिसार और सिरसा है। भिवानी जिले का पर्याप्त क्षेत्र इस बोली के अन्तर्गत आता है। इसे केन्द्रीय हरियाणवी और राजस्थान (बागड़ी) का मिश्रित और विकसित रूप मान

सकते हैं। बहुवचन रचन में ओं प्रत्यय का योग मिलता है; यथा– बात > बातॉं। लोप का बहुल रूप सामने आता है; जैसे– अहीर > हीर, अनाजठाना, नाज, उठाना।

6. कौरवी हरियाणवी – कौरवी क्षेत्र से जुड़ें हरियाणवी के भाग में इस उपबोली का रूप मिलता है। यमुना नगर, कुरूक्षेत्र, करनाल और पानीपत के कुछ भाग में इसका प्रयोग होता है। आकारांत शब्दों का बहुल प्रयोग मिलता है; यथा– खाना, धोना, सोना आदि।

7. अबदालवी हरियाणवी –अम्बाला इसका मुख्य केन्द्र है। इस उपबोली पर पंजाबी भाषा का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसमें महाप्राण ध्वनि अल्पप्राण हो जाती है; यथा– हाथ > हात, साथ > सात। लोप की बहुलता भी दिखाई देती है – कृपया > कृप्या, मिनट > मिन्ट।

(घ) कन्नौजी – कन्नौजी नामकरण कन्नौज क्षेत्र के नाम से हुआ है। इसका प्रयोग फर्रूखाबाद, हरदोई, शाहजहॉंपुर, पीलीभीत हैं। इटावा और कानपुर के पश्चिमी भाग में भी इसका प्रयोग होता है। इसका क्षेत्र अवधी और ब्रज के मध्य हैं। इस पर ब्रज का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता है।

(ङ) बुंदेली –बुंदेलखण्ड में बोली जाने के कारण इसे बुंदेली बोली की संज्ञा दी गई है। इसके प्रयोग क्षेत्र में झांसी, छतरपुर ग्वालियर, भोपाल, जालौन का भाग आता है। इसमें और ब्रज बोली में पर्याप्त समानता है।

2. पूर्वी हिंदी

पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के पूर्व में स्थित होने के कारण इसे पूर्वी हिंदी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग प्राचीन कोशल राज्य के उत्तरी–दक्षिणी क्षेत्र में होता है। वर्तमान समय में इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर, लखनऊ, गोंडा, बहराइच, फैजाबाद, जौनपुर, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर, इलाहाबाद, मध्य प्रदेश के जबलपुर, रीवॉं आदि जिलों से संबंधित मान सकते हैं। यह इकार, उकार बहुल रूप वाली उपभाषा है। इसमें तीन बोलियॉं हैं–अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।

अवधि : 'अबध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे 'अवधी' नाम से अभिहित किया गया है। इसका प्रयोग गोंडा, फैजाबाद, सुल्तानपुर, रायबरेली, बाराबंकी, इलाहाबाद, लखनऊ, जौनपुर आदि जिलों में होता है।

इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं –

1. इसमें 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है– शंकर > संकर, शाम > साम आदि।

2. इसमें 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है; जैसे वन > बन, वाहन > बाहन आदि।

3. 'इ' और 'उ' स्वरों का बहुल प्रयोग होता है।

   इ आगम–स्कूल > इस्कूल, स्त्री > इस्त्री

   उ आगम–सूर्य > सूरज झ सूरूजु

   'ण' ध्वनि के स्थान पर प्रायः 'न' का प्रयोग होता है।

   ऋ के स्थान पर 'रि' का उच्चारण प्रयोग होता है।

   भक्तिकाल में समृद्ध साहित्य की रचना हुई है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' और जायसी कृत 'पद्‌मावत' महाकाव्यों की रचना अवधी में हुई है। सूफी काव्य–धारा के सभी कवियों ने अवधी भाषा को ही अपनाया। समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ख) बघेली – इस बोली का केन्द्र रीवाँ है। मध्य प्रदेश के दगोह, जबलपुर, बालाघाट में और उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में कुछ अंश तक बघेली का प्रयोग होता है। इस क्षेत्र पर अवधी का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। कुछ विद्वानों ने बघेली को स्वतंत्र बोली न कह कर अवधी का दक्षिणी रूप कहा है। इसमें अवधी की भांति 'व' ध्वनि 'ब' के रूप में प्रयुक्त होती है।

(ग) छत्तीसगढ –'छत्तीसगढ़' क्षेत्र से संबंधित होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी बोली नाम दिया गया है। वर्तमान समय में छत्तीसगढ़ प्रदेश के रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में इसका प्रयोग होता है। इसमें कहीं–कहीं पर 'स' ध्वनि 'छ' हो जाती है। अल्पप्राण ध्वनियों के महाप्राणीकरण की प्रवृति विशेष रूप से मिलती है। समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

3. बिहारी हिंदी

बिहार प्रदेश में प्रयुक्त होने के आधार पर इसे बिहारी नाम दिया गया है। इसका उद्‌भव मागधी अपभ्रंश भाषा से हुआ है। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण में बिहारी को हिंदी से अलग वर्ग में व्यवस्थित किया है। ये भाषाएँ आकार बहुल हैं। बहुवचन बनाने हेतु नि या न का प्रयोग होता है; यथा– लोग > लागनि, लोगन

सर्वनाम के विशेष रूप प्रयुक्त होते हैं – तोहनी हमनी आदि।

बिहारी की अनेक प्रवृत्तियाँ पूर्वी हिंदी के समान मिलती हैं – इससे मुख्यतः तीन बोली भागो में विभक्त करते हैं।

(क) भोजपुरी – भोजपुरी निश्चय ही बिहारी हिंदी का सबसे विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त रूप है। भोजपुर बिहार का एक चर्चित स्थान है। इसी के नाम पर इसे भोजपुरी कहते हैं। इसका केन्द्र बनारस है। भोजपुरी का प्रयोग उत्तर प्रदेश के गाजीपुर, बलिया, बनारस, आजमगढ़, देवरिया, गोरखपुर जिलों में अवधि की कुछ प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इसमें 'र' ध्वनि का प्रायः लोप हो जाता है; यथा– लरिका > लरका (लड़का), करया > कइया (काला) 'ल' की ध्वनि की प्रबलता दिखाई देती है; जैसे– खाइल, चलल, पाइल आदि। इकार और उकार बहुल रूप में मिलता है। समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ख) मैथिली – मिथिला क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे 'मैथिली' नाम दिया गया है। इसका प्रयोग दरभंगा, सहरसा, मुजफ्फरनगर, मुंगेर और भागलपुर में होता है। इसमें शब्द स्वरांत होते हैं। इसमें संयुक्त स्वरों (ए, ऐ, ओ, औ) के दीर्घ स्वर के साथ ह्रस्व रूप में प्रयुक्त होता है। इसमें सहायक क्रियाओं के विशेष रूप मिलते हैं; यथा – छथि, छल आदि।

इ, उ बहुला रूप अवधि के ही समान हैं।

मैथिली साहित्य में तत्सम शब्दावली का आकर्षक प्रयोग साहित्यकारों के संस्कृत ज्ञान का परिचायक है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य और आकर्षक साहित्य रचा गया है। मैथिल कोकिल विद्यापति मैथिली भाषा को अपनाने वाले सुनाम धन्य कवि हैं।

(ग) मगही – 'मागधी' अपभ्रंश से विकसित होने और 'मगध' क्षेत्र में प्रयुक्त होने के आधार पर इसके नाम की इसके स्वरूप और भोजपुरी के स्वरूप में बहुत कुछ समानता है। इसमें सहायक 'हल्' से हकी, हथी, हलखिन आदि का रूप प्रयुक्त होते हैं।

क्रारक–चिह्नों में सामान्य के साथ अतिरिक्त चिह्न भी प्रयुक्त होते हैं; यथा–संप्रदान–ला, लेन, आधकरण–माँ। शब्दों में तद्‌भव या बहुल तद्‌भव रूप मिलते हैं; यथा– बच्चे के लिए 'बुतरू' का प्रयोग। उच्चारण में अनुनासिक बहुल रूप है।

4. राजस्थानी हिंदी

राजस्थानी प्रदेश के नाम पर विकसित हिंदी को यह नाम मिला है। इसका उदगम शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके प्रारंभिक रूप में डिंगल का प्रबल प्रभाव रहा है। इसकी कुछ प्रवृत्तियाँ ब्रजभाषा के समान हैं। इसमें टवर्गीय वनियों की प्रधानता होती है; यथा – ड, ड़, ण, ळ ।

महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राणीकरण होने के की भी प्रवृत्ति है।

बहुवचन परिवर्तन में मुख्यतः 'आँ' का प्रयोग होता है।

तद्भव शब्दावली का प्रबल रूप मिलता है।

राजस्थानी में एक ओर वीर रस की ओजप्रधान रचनाएँ मिलती हैं, तो श्रृंगार रासो, दूहा काव्य–ग्रंथों की रचना हुई है। इसमें समृद्ध साहित्य और लोक–साहित्य सृजन क्रम चल रहा है। राजस्थानी में चार प्रमुख बोलियों के रूप मिलते हैं – मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

(क) मेवाती– मेव जाति के नाम पर इस बोली का नाम 'मेवाती' रखा गया है। इसका प्रयोग राजस्थान के अलवर और भरतपुर के उत्तर–पश्चिम भाग में होता है। हरियाणा के गुड़गाँव के कुछ भाग में भी इस बोली का रूप देखा जा सकता है। ब्रज क्षेत्र से लगा होने के कारा इस पर ब्रज का प्रभाव होना स्वाभाविक है। मेवाती में समृद्ध लोक–साहित्य है।

(ख) जयपुरी– इस बोली का केन्द्र जयपुर है, इसलिए इसे जयपुरी नाम दिया गया है। इसका प्रयोग पूर्वी राजस्थान, जयपुर, कोटा और बूँदी में होता है। इस बोली पर ब्रज का प्रभाव दिखाई देता है। परसगों में कर्म–संप्रदान–नै, कै; करण–अपादान–सूं, सौ; अधिकरण–मैं, मालैं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ग) मारवाड़ी– इस बोली को 'मेबाड़' क्षेत्र के नाम पर 'मेबाड़ी' कहा गया है। राजस्थान के पश्चिमी भाग में प्रयुक्त होने के कारण इसे पश्चिमी राजस्थान नाम भी दिया जाता है। इसका मुख्य क्षेत्र जोधपुर है। पुरानी मारवाड़ी डिंगल कहते थे। मारवाड़ी व्यवसाय की दृष्टि से राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध कवि नरपति नाल्ह, चन्दबरदाई इसी से संबंधित रहे हैं। मीराबाई की रचनाओं में यह रूप देख सकते हैं।

इसमें 'स' ध्वनि 'श' हो जाती है।

अनुनासिक ध्वनि का बहुल प्रयोग।

तद्भव शब्दावली का बहुल रूप है।

(घ) मालवी – मालवा क्षेत्र से संबंधित होने के आधार पर इसे मालवी नाम मिलता है। राजस्थान के दक्षिण में प्रयुक्त होने से दक्षिण नाम भी दिया जाता था। इसके प्रयोग क्षेत्र में उज्जैन, इन्दौर और रतलाम आते हैं।

हिंदी और उसका विकास

इसमें 'ड' ध्वनि का विशेष प्रयोग होता है।

इसमें 'ण' ध्वनि नहीं है।

विभिन्न ध्वनियों का अनुनासिक रूप सामने आता है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

5. पहाड़ी हिंदी

पहाड़ी हिंदी का उद्‌भव 'खास' अपभ्रंश से हुआ है। पहाड़ी क्षेत्र में यातायात की शिथलता के कारण भाषा में विविधता का होना निश्चित रहा। अध्ययन सुविधा के लिए इसे तीन उपवर्ग में विभक्त किया जाता है– पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी।

(क) पश्चिमी पहाडी – इसका केन्द्र शिमला है। इसमें चंबाली, कुल्लई, क्योंथली आदि मुख्य बोलियाँ आती हैं। यहाँ की बोलियों की संख्या तीन से अधिक है। ये मुख्यतः टाकरी या टक्करी लिपि में लिखी जाती हैं। यहाँ हिंदी का मूलरूप हिंदी में ही मिलता है।

(ख) मध्य पहाड़ी– नेपाल पूर्वी पहाड़ी का केन्द्र है। नेपाली, गुरखाली, पर्वतिया और खसपुरा नाम भी दिए जाते हैं। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य और संक्षिप्त–साहित्य भी मिलता है। नेपाल के संरक्षण मिलने के आधार पर इसका साहित्यिक रूप में विकास हो रहा है। इसकी लिपि नागरी है।

6. दक्खिनी हिंदी

दक्खिनी शब्द दक्षिण का तद्‌भव शब्द है। आर्यों का आगमन जब सिंध, पंजाब प्रांत में हुआ, तो यह भाग दाहिने हाथ की ओर था, उसे दक्षिण कहा गया है। हिंदी साहित्य के इइतिहास पर प्राचीनकाल से यदि विचार करें, तो भारत में प्रचलित विभिन्न लिपियों में हिंदी साहित्य मिलता है। गुजरात और महाराष्ट्र में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्र के समान ही होता रहा है। मध्य युग में हिंदी दक्षिण के प्रांतों में आर्कषक रूप में प्रयुक्त होती थी।

अकबर के समय में दक्खिन क्षेत्र में मालवा, बरार, खानदेश, औरंगाबाद, हैदराबाद, मुहम्मदाबाद और बीजापुर आ गए हैं। इस प्रकार दक्खिन क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे दक्खिनी हिंदी नाम दिया गया है।

उद्‌भव–विकास : चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली का शासक मुहम्मद–बिन–तुगलक था। उन्होंने दक्षिण की शासन व्यवस्था को अनुकूल रूप देने के लिए अपनी राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद करने का निर्णय लिया। मुहम्मद–बिन–तुगलक के जाने से पूर्व निजामुद्दीन चिश्ती ने 400 सूफी पहले ही दक्षिण भेज दिए थे। तुगलक अपने साथ सूफी फकीर भी ले गया। वहाँ शासन व्यवस्था अनुकूल होने पर राजधानी को पुनः दौलताबाद से दिल्ली लाने का निर्णय लिया। उस समय आज की तरह यातायात सुविधा न थी। इस प्रकार अनेक सूफी–संत और सिपाही वहाँ से लौटे ही नहीं। इस निर्णय से तुगलक को 'पागल' की उपाधि अवश्य मिली, किंतु इससे दक्षिण में प्रभावी प्रचार हुआ। दिल्ली से जाने वालों की भाषा खड़ी–बोली, ब्रज, अवधी, पंजाबी आदि के मिश्रित के रूप में थी। वहाँ हिंदी का प्रचार होता गया। अलाउद्दीन खिलजी, अकबर, जहाँगीर, शाजहाँ और औरंगजेब के समय तक दक्खिनी हिंदी विकसित होती गई है। दक्खिनी भाषा के स्वरूप के विषय में डॉ0 परमानंद पांचाल का कथन इस प्रकार है–

''दक्खिनी हिंदी का वह रूप है, जिसका विकास 14वीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही और आदिलशाही आदि राज्यों के सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आसपास की हरयाणवी एवं खड़ी–बोली ही थी, जिस पर ब्रज, अवधी और पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात् तेलगु, कन्नड़ और पूर्तगाली आदि का भी प्रभाव पड़ा था और इसने अरबी, फारसी, तुर्की तथा मलयालम आदि भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किये थे। इसके लेखक और कवि प्रायः इस्लाम के अनुयायी थे। इसे एक प्रकार से सबसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है। ''डॉ0 श्रीराम शर्मा के अनुसार, बरार, हैदराबाद, महाराष्ट्र और मैसूर में ही दक्खिनी हिंदी भाषा का उद्‌भव विकास हुआ है।

इसमें अव्यय शब्द 'और' के स्थान पर 'होर' का प्रयोग होता है।

नकारात्मक शब्द 'नहीं' के लिए 'नक्को' का प्रयोग होता है।

विविध भारतीय भाषाओं के तत्सम और तत्सम शब्दों के साथ अरबी, फारसी शब्दों का प्रभावी प्रयोग मिलता है। शब्द रूप में पर्याप्त विविधता मिलती है; यथा– एक > येक, यकी, > यक्की, इक आदि।

दक्खिनी हिंदी का भाषायी स्वरूप, भक्ति का तीन संत काव्य की भाषा से बहुत कुछ मेल खाता है –

''वे अरबी बोल न जाने,
न फारसी पछाने
यूँ देखत हिंदी बोल
पन मानी है नफ्तोल
मीराँजी शम्सुल उश्शाक्
''ऐब न राखे हिंदी बोल,
माने तो चख देख घंडोल।''

– शेख बुराहानुद्दीन जानम

तुलना –

''लूंचत मूंडत फिर फोकट तीरथ करे या हज।
थान देख जे मान भई मूरख भज।''

–मीराँजी शम्सुल उश्शाक

''मूड़ मड़ाइ हरि मिले, तो सब कोउ लेठ मुड़ाय।
बार–बार के मूड़ते भेड़ न बैकुंठ जाय।।''

– कबीर

दक्खिनी हिंदी में समृद्ध साहित्य है। इसके कुछ प्रतिनिधि साहित्यकार हैं – उश्शाक, शेख बुराहानुद्दीन जानम, काजी महमूद बहरी, गुलाम अली, और मुहम्मद अमीन आदि।

निश्चय ही दक्खिनी हिंदी में हिंदी भाषा का एक विषेश स्वरूप है और इसमें समृद्ध साहित्य है। इसलिए हिंदी भाषा और हिंदी साहित्य के इतिहास में दक्खिनी हिंदी का महत्व स्वतः सिद्ध है।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी की तुलना

हिंदी भाषा के विभिन्न छः भागों– पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, पहाड़ी हिंदी और दक्खिनी हिंदी में पूर्वी और पश्चिमी हिंदी का विशेष महत्व है। हिंदी भाषा के मध्य युग में इन्हीं दो वर्गों की अवधी और ब्रज दो बोलियों को हिंदी के रूप में मान्यता मिली थीं। इसी में काव्य–रचना होती रही है। भक्तिकाल में अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं को काव्य–सृजन में अपनाई जाती रही है और रीतिकाल में ब्रजभाषा प्रयुक्त होती थी। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' महाकाव्य की रचना अवधी में की है। जायसी ने 'पदमावत्' की रचना ठेठ अवधी में की है। 'प्रमाश्रयी काव्य' अवधी में ही लिखा गया है। भक्तिकाल के समस्त अष्टछाप कवियों ने ब्रजभाषा को अपनाया है, तो रीतिकाल के केशव, घनानन्द, बिहारी आदि कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

तुलनात्मक अध्ययन

1. पश्चिमी हिंदी की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई, तो पूर्वी हिंदी का उद्‌भव अर्थ–मागधी से हुआ।
2. पश्चिमी हिंदी की पाँच प्रमुख बोलियाँ हैं– कौरवी, हरियाणवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली। पूर्वी हिंदी की तीन प्रमुख बोलियाँ हैं – अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी।
3. पश्चिमी हिंदी निकटवर्ती भाषा पंजाबी से यत्र–तत्र प्रभावित लगती है और पूर्वी हिंदी में बिहारी हिंदी से पर्याप्त समानता मिलती है।
4. पूर्वी हिंदी में 'इ' और 'उ' का बहुल रूप में प्रयुक्त पश्चिमी हिंदी में 'ई' और 'ऊ' के प्रयोग की प्रमुखता है।
5. पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है, यथा–बालक > बालक किन्तु पूर्वी हिंदी में पूर्ववत रहती ह।
6. पूर्वी हिंदी में संयुक्त स्वरों का स्वतंत्र रूप में उच्चारण होता है; यथा– और > क अउर ऐनक > अइनक। पश्चिमी हिंदी में संयुक्त स्वर का बहुल रूप में प्रयोग होता है।
7. पूर्वी हिंदी में 'ल' के स्थान पर यदा–कदा 'र' का प्रयोग होता है, यथा–केला > केरा, फर > फल आदि। पश्चिमी हिंदी में 'ल' का प्रयोग होता है।
8. पूर्वी हिंदी में 'श' ध्वनि प्रायः 'स' के रूप में प्रयुक्त होी है; यथा– शंकर > संकर, शेर > सेर। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।
9. पूर्वी हिंदी में 'व' ध्वनि प्रायः 'ब' के रूप में प्रयुक्त होता है; यथा – वन > बन, आशर्वाद > आसीर्वाद आदि। पश्चिमी हिंदी में प्रायः मूल रूप प्रयुक्त होता है।
10. पूर्वी हिंदी में कारक–चिह्न 'ने' का प्रयोग विरल रूप में होता है, जबकि पश्चिमी हिंदी का मुख्य चिह्न है।
11. पूर्वी हिंदी में उत्तम पुरुष सर्वनाम में एकवचन के लिए 'हम' और बहुवचन के लिए 'हम' या 'हमस ब' प्रयुक्त होते हैं। जबकि पश्चिमी हिंदी में प्रायः एकवचन के लिए 'मैं' और बहुवचन के लिए 'हम' का प्रयोग होता है।
12. पूर्वी हिंदी में क्रिया के साथ यत्र–तत्र 'ब' का प्रयोग होता है– चलब, करब आदि तो पश्चिमी हिंदी (ब्रज) में ओकर रूप सामने आता है– चलना > चलनों, करना > करनो।
13. क्रिया के भविष्यत् काल के रूप निर्धारा में ग, गी, गे के प्रयोग पश्चिमी हिंदी में मिलते हैं, किंतु पूर्वी हिंदी में रूप–विविधता है।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि हिंदी की प्रमुख उपभाषाओं पूर्वी हिंदी और पश्चिमी हिंदी की बोलियों की शब्द–संपदा में बहुत कुछ समानता है, वहीं उनकी ध्वन्यात्मक, शब्द–संरचनागत और व्याकरण आधार पर पर्याप्त भिन्नता है। यह भिन्नता ही संबंधित बोलियों की अपनी विशेषताएँ हैं। हिंदी की इन दोनों उप–भाषाओं और उनकी बोलियों का महत्व स्वतः सिद्ध है।

2.5 मानक हिंदी का स्वरूप

रूप–अध्ययन के समय आचार्य यास्क कृत निरूक्त में नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात की चर्चा की गई है– ''चत्वरि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपातश्च। ''नाम के अंतर्गत संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण, अख्यत के अंतर्गत क्रिया का अध्ययन किया जाता है। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया शब्दों को अर्थ तत्त्व की संज्ञा दी जाती है।

इन्हें मूल शब्द का भी नाम दिया जाता है। इन शब्दों को वाक्य में प्रयोग के लिए विविध उपसर्ग तथा प्रत्ययों को प्रयोग किया जाता है। रूप परिवर्तन की प्रक्रिया में उपसर्ग तथा प्रत्यय की बहुकोणीय भूमिका होती है। इस दिशा में कारक व चिह्नों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है।

हिंदी भाषा में समय, परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार रूप प्रक्रिया के अवयवों में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। ऐसे अवयवों में यदि कुछ परंपरागत स्वरूप मिलता है, तो बहुत कुछ नवीनता भी दिखाई देती है।

(अ) उपसर्ग

रूप–रचना प्रक्रिया में जिन अक्षर या अक्षर–समूह का प्रयोग शब्द के पूर्व किया जाता है, उन्हें उपसर्ग यह पूर्वसर्ग नाम दिया जाता है; यथा–आचार्य में 'प्र' उपसर्ग लगाकर प्राचार्य की रचना होती है। उपसर्ग के प्रयोग से शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। यथा– आचार्य का अर्थ है– शिक्षक तो प्राचार्य का अर्थ है –मुख्य या प्रधान शिक्षक। हिंदी उपसर्गों को निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं–

1. तत्सम उपसर्ग – साहित्यिक हिंदी में परंपरागत तत्सम शब्दों के साथ तत्सम, उपसर्गों का प्रयोग कर अनुकूल रूप–रचना की जाती है। संस्कृत के प्र, परा, अप, सम, अनु, अब, स, निर, दुस, दूर, वि, अधि, अपि, शु, कल, अभि, प्रति, परि, उप आदि के यत्र–तत्र प्रयोग मिलते हैं। इनका अपना स्वतंत्र अर्थ नहीं होता किंतु शब्द का साथ पाकर विशेष अर्थ देते हैं। ना ही उनका अर्थ होता है; यथा–सुगंध > सु+गंध = अनुकूल या मनभावन गंध। निर्जन निर+जन = जहाँ कोई न हो अर्थात् जनरहित। उपसर्ग को अव्यय की कोटि में रखा जाता है, क्योंकि इनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

2. तद्भव उपसर्ग –हिंदी की रूप–रचना में संस्कृत के उपसर्ग परिवर्तित होकर भी प्रयुक्त होते हैं। इनकी अर्थ अभिव्यक्ति की शक्ति और प्रयोग तत्सम उपसर्ग के ही समान हैं। ऐसे उपसर्गों का प्रयोग प्रायः तद्भव शब्दों के साथ लगता है। हिंदी के कुछ प्रमुख तद्भव उपसर्ग द्रष्टव्य हैं–

   अ– यह उपसर्ग तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों में भी लगता है; यथा –

   थाह > अ +थाह = अथाह

   जान > अ+जान = अजान

   अन– यह 'अ' के स्थान पर प्रयुक्त किया जाने वाला उपसर्ग है–

   कही > अन+कही = अनकही

   थक > अन+थक = अनथक

   मोल > अन+मोल = अनमोल

   अध– यह संस्कृत अर्ध से परिवर्तित हुआ उपसर्ग है –

   पका > अध+पका = अधपका

   खिला > अध + खिला = अधखिला

   कपार > अध + कपार = अधकपार

   औ– यह तत्सम उपसर्ग 'अव' से परिवर्तित हो कर बना है। इसका प्रयोग ही उए 'बुरा' अर्थ में किया जाता है। इस उपसर्ग के प्रयोग से जो रूप रचना होती है वह अपकर्ष अर्थ देने लगता है; यथा –

गुन > औ + गुन = औगुन

घट > औ + घट + औघट

दु– इसका प्रयोग संस्कृत के दुर उपसर्ग के स्थान पर उसके अर्थ में किन्तु तद्भव शब्दों में साथ किया जाता है; यथा –

बली > दु + बली + दुबली

काल > दु + काल = दुकाल

नि– यह संस्कृत के उपसर्ग निर् से परिवर्तित हो कर बना है। यह उसी अर्थ में प्रयुक्त भी होता है।

डर > नि + डर = निडर

पूता > नि + पूता = निपूता

3. विदेशी उपसर्ग – भारत पर एक लम्बे समय से विदेशियों का शासन रहा है। उनकी भाषा यहाँ की राजभाषा या धर्म भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है। इस कारण उन विदेशी भाषाओं के विविध प्रभावों में उपसर्ग प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। इस उपसर्ग का प्रयोग विदेशी भाषा के शब्दों के साथ परम्परागत शब्दों के साथ भी होता रहा है। विदेशी उपसर्गों को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) अरबी–फारसी उपसर्ग

कम (थोड़ा)	–	कमजोर, कमसमझ
गैर (भिन्न)	–	गैरजिम्मेदार, गैरहाजिर
ना (नहित/अभाव)	–	नालायक, नापसंद
बद (बुरा)	–	बदमाश, बदनाम, बदतमीज,
बे (रहित/बिना)	–	बेईमान, बेरहम, बेकाम
हम (साथ)	–	हमदर्द, हमउम्र, हमसफर
हर (प्रत्येक)	–	हरदम, हरघड़ी, करकाम

(ख) अंग्रेजी उपसर्ग

वर्तमान समय की हिंदी में अंग्रेजी के उपसर्गों से भी रूप–संरचना का निर्धारण किया जाता है। इन उपसर्गों का प्रयोग मुख्यतः अंग्रेजी शब्दों के साथ होता है किंतु यदा–कदा परंपरागत हिंदी शब्दों के साथ भी किया जाता है।

सब	–	सब–इंस्पेक्टर, सब–ओवरसियर
हेड	–	हेड मास्टर, हेड पादरी

रूप–संरचना की प्रक्रिया में उपसर्गों की विशेष भूमिका होती है। इससे विविध भावों की अभिव्यक्ति को दिशा मिलती है।

उपसर्गों के प्रकार्य–हिंदी रूप–संरचना में उपसर्ग की विशेष भूमिका होती है। इनके द्वारा नवीन शब्दों की रचना, व्युत्पादन, अर्थद्योतन तथा संबंध, द्योतन की अनुकूल भूमिका सम्पन्न होना महत्वपूर्ण है। नए शब्दों के निर्माण से

भाषा–समृद्ध होती है; यथा –महां > महाद्वीप, महाधिवक्ता, सम > समकश, समतोल। वर्ग–विशेष के शब्द में परिवर्तन से व्युत्पादन कार्य समान होता है; यथा –

संज्ञा		विशेषण	क्रिया		विशेषण
अन–मेल	>	अनमेल	अ–टलना	–	अटल
दुर–मुख	>	दुर्मुख	अ–सहना	–	असह
बे–दद्र	>	बेदर्द	अन–पढ़ना	–	अनपढ़
ला–पता	>	लापता			

उपसर्ग के प्रयोग से विविध रूपों की रचना और विविध भावों को अभिव्यक्ति मिलती है।

प्रत्यय– प्रत्यय के लिए परसर्ग नाम भी दिया जाता है। रूप की संरचना में प्रत्यय की विशेष भूमिका होती है। प्रत्यय उस अक्षर या अक्षर समूह को कहते हैं जो शब्द के अंत में लगता है। इसके प्रयोग से मूल शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। प्रत्येक भाषा में प्रत्यय की रचना होती है, किंतु सभी भाषाओं की प्रत्यय की प्रवृत्ति में भिन्नता होती है। हिंदी में संस्कृत के अनेक तत्सम प्रत्यय आ गए हैं, जो अनेक तद्भव बन गए हैं। विदेशी भाषा के प्रत्यय भी हिंदी में प्रयुक्त होते हैं। अनेक विदेशी प्रत्यय तो परम्परागत शब्दों के साथ भी प्रयुक्त होते हैं। हिंदी में बहुल रूप से प्रयुक्त प्रत्ययों को निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(क) परम्परागत प्रत्यय

संज्ञावाची प्रत्यय –जिन प्रत्ययों के योग से संज्ञा रूप की संरचना होती है, उन्हें उसी आधार पर संज्ञावाची प्रत्यय कहते हैं। हिंदी में ऐसे प्रत्ययों का पर्याप्त रूप में प्रयोग होता है।

अक्कड़		>	पियक्कड़, बुझक्कड़, भुल्क्कड़।
अन्त	(–अन्त)	>	रटन्त, भिड़न्त, गढ़न्त।
आई	(–आपिका)	>	चढ़ाई, जुताई, पढ़ाई, तिलाई।
आपा	(–त्व)	>	रंडापा, बुढ़ापा, मोटापा।
आव	(–अभ्य)	>	घुमाव, छिड़काव, बचाव।
आगट	(–आप+वृति)	>	थकावट, बनावट, मिलावट, सजावट।
हाइट	(आप+वृति)	>	गड़गड़ाहट, घबराहट, थर्थराहट।
ईला		>	पथरीला, रंगीला, गंठीला।
औती	(–पत्री)	>	चुनौती, बपौती, मनौती
पन	(–त्व)	>	लड़कपन, गोरापन, गंवारपन।

(ख) विदेशी प्रत्यय – हिंदी में अरबी और फारसी के कुछ प्रत्यय ग्रहण कर लिए गए हैं। रूप–संरचना में इनका प्रयोग किया जाता है। बोलचाल की भाषा में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, किंतु साहित्यिक हिंदी में विरल प्रयोग मिलता है। कुछ प्रमुख प्रत्यय और उनसे आधारित रूप संरचना द्रष्टव्य है।

ई	–	खुश	>	खुशी
		नवाब	>	नवाबी
		दोस्त	>	दोस्ती
कार	–	जानना	>	जानकार
		पेश	>	पेशकार
		साहू	>	साहूकार
दानी	–	गोद	>	गोददानी
		मच्छर	>	मच्छरदानी
		चाय	>	चायदानी
दान	–	इत्र	>	इत्रदान
		पान	>	पानदान
		चाय	>	चायदान
खाना	–	छपाई	>	छपाईखाना
		डाक	>	डाकखाना
ची	–	मशाल	>	मशालची
		नकल	>	नकलची
बाज	–	पतंग	>	पतंगबाज
		कबूतर	>	कबूतरबाज
बंद	–	नजर	>	नजरबंद
		मोहर	>	मोहरबंद
		हथियार	>	हथियारबंद
साज	–	घड़ी	>	घड़ीसाज
		घोड़ी	>	घोड़ीसाज

2.2 काव्य भाषा के रूप में अवधीः का उद्‌भव और विकास

प्रत्येक युग की साहित्य भाषा और जन भाषा के स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता होती है। इसी प्रकार काव्य–भाषा और गद्य–भाषा में भी पर्याप्त अंतर होता है। वर्तमान समय में यह अंतर कुछ सिमटता जा रहा है। मध्ययुग की दोनों भाषाओं में यह भिन्नता स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने तो काव्य सृजन के लिए ब्रज को चुना तो गद्य के लिए खड़ी–बोली का चयन किया है। आधुनिक काल में यत्र–तत्र काव्य–भाषा के रूप बोलचाल के लिए निकट दिखाई देता है, किंतु काव्य भाषा और बोलचाल की भाषा में पद्धति के कारण सदा ही भेद रहेगा।

हिंदी भाषा की विविध बोलियों में अवधी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अवधी को भी ब्रज के ही समान भाषा की

संज्ञा दी गई है। ब्रज को जिस प्रकार ब्रजभाषा कहते हैं, उसी प्रकार अवधी को अवधी भाषा नाम से सम्बोधित किया जाता है। अवधी भाषा के रूप में प्रयोग करने के कारण 'अवधी बोली' मान लेना खटकता है। अवधी को भाषा नाम मिलने का कारण है कि इसमें पर्याप्त साहित्य की रचना हुई है और इसका व्याकरण भी निर्धारित हो चुका है। अवधी एकमात्र ऐसी बोली है जिसे भाषा के रूप में स्थान मिला ओर उसके साहित्यिक और ठेठ दो रूपों में साहित्यिक रचना हुई। इन दो रूपों को भक्तिकाल के दो प्रमुख महाकवियों ने काव्यभाषा के रूप में अपनाया है। भक्त शिरोमणि संत तुलसीदास ने अवधी के साहित्यिक रूप को अपनाया है, तो प्रेमाश्रयी काव्यधारा के सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी आदि ने अवधी के ठेठ रूप को अपनाया है। संत तुलसी की रचना 'रामचरित मानस' राजमहल से लेकर रंक की झोपड़ी तक ससम्मान पहुँच चुकी है, तो जायसी का पद्मावत महाकाव्य वित्रृत् वर्ग के मस्तिष्क पर छा चुका है।

अवधी बोली के प्रारम्भिक साहित्यिक प्रयोग का पुट प्राकृत अपभ्रंश के ग्रंथ 'राउटन बेल' और प्राकृत 'पैंगलग' में मिलता है। इसके आधार पर अवधी के साहित्यिक स्वरूप के प्रारंभ को बाहरवीं से चौदहवीं शताब्दी के मध्य मान सकते हैं। खड़ी बोली के प्रथम कवि माने जाने वाले अमीर खुसरों की भाषा में अवधी की छाया देख सकते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार अमीर खुसरो का काल 1255 से 1324 ई0 है।

तरूवर से तिरिया उतरी, उनने बहुत रिझाया।

बाप का उसने नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।

आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।

अमीर खुसरो यो कहें, अपने नाम न बोली–निबोरी।

इन पंक्तियों में 'इक' विशेषण और उत्तरी क्रिया पदों में अवधी का संरचनात्मक स्वरूप दिखाई देता है। मुल्ला दाऊद की रचना 'चन्दयान' (1379 ई0) में अवधी बोली का साहित्यिक रूप मिल गया है। यह अवधी की प्रथम साहित्यिक रचना है। कुतुबन–कृत मृगावती (1503 ई0) दोहे और चौपाई छन्दों पर आधारित अवधी रचना है। यह सूफी काव्यधारा का श्रेष्ठ, सरल और सरस काव्यकृति है। मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत (1540 ई0) प्रमाश्री काव्यधारा की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अवधी भाषा का ही नहीं हिंदी साहित्य के चर्चित महाकाव्यों में से एक और प्रमुख ग्रंथ है। जायसी की भाषा में अपूर्व माधुर्य है। ठेठ भाषा का जैसा रूप जायसी ने हिंदी साहित्य के लिए अपनाया है, वैसा अन्य किसी कवि ने नहीं अपनाया है।

सँवरौ आदि एक करतारू। जेहँ जिए दीन्ह कीन्ह संसारू।

कीन्हेसि प्रथम जोति परमासू। कीन्हेसि तेहि पिरीति कविसासू।।

कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतई रंग उरेहा।

कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू।

कीन्ह सबइ अस जाकर दोसरहि छाज न काहु।

पहिलेहि तेहिक नाऊँ लई कथा कहौं अवगाहु।।

इस पद्यांश में आदि, प्रथम पवन, जल आदि कुछ एक तत्सम शब्दों को छोड़कर अन्य शब्दों में ठेठ अवधी का रूप देख सकते हैं। इन पंक्तियों में इकार, आकार बहुला रूपों के साथ अनुनासिका का भी गहरा रंग दिखाई देता है। जायसी ने पद्मावत में फारसी पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य भाषा में विभिन्न पदों को विपरीत क्रम में प्रयोग किया है।

1. भौहें स्याम धनुकू जनु ताना।

   जासौं हेर मार बिख बाना।। – नखशिख खण्ड (102)

2. नैन बांक सरि पूज न कोऊ।

   मान समुंद्र आस उलथहिं दोऊ।। – नखशिख खण्ड (103)

इन पंक्तियों में 'स्याम भौंहें' और 'बांक नैन' न कहकर ''भौंहें स्याम'' और 'नैंन बांक' रूप में विपरीत क्रम से प्रयोग करने से भाषा में भावात्मक गम्भीर आ गई है। जायसी ने अवधी भाषा में भारतीय निर्गुण साधना की प्रतीकात्मक प्रस्तुतीकरण में अपूर्व सफलता प्राप्त की है–

''मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा।।''

''तनि चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पदमिनी चीन्हा।

मुरू सुआ जेहि पन्थ देखावा। बिन गुरू जगत को निरगुन पावा।

नागमती यह दुनिया–धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा।

राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानु।

प्रेमकथा यहि भाँति विचारहु। बूझि लेहु जो बूझै पारहु।।

जायसी ने भाषा और भाव के संबंध को स्पष्ट करते हुए प्रेम को भाषा की सरसता, दिव्यता और महत्ता के आधार रूप में स्वीकार किया है।

तुरकी अरबी हिन्दूई, भाषा जेती आहिं।

जेहिं महँ मारग प्रेमकर, सबै सराहैं ताहि।

ठेठ अवधि में रचित काव्य भाषा की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें उकार बहुत शब्दों का प्रयोग है। इस ध्वनि विशेष के बहुल प्रयोग से ध्वन्यात्मकता का विशिष्ट रंग उभरता है –

तपै लाग अब जेठ आसाढी। मैं मोकहँ यह छाजनि गाढ़ी।

तन तिनुवर भा झूरौं। मैं बिरहा आगरि सिर परी।

साँठि नाहिं लगि वात को पूँछा। बिनु जिय मएउ मूँज तन छूँछा।

बंध नहिं और बंध न कोई। बाक न आव कहौं केहि रोई।

ररि दूबरि भई टेक बिहूनी। थंभ नाहिं उठि सकै न थूनी।

बरिसहिं नैन चुअहिं घर माहाँ। तुम्ह बिनु कंत न छाजन हाँहाँ।

कों रे कहाँ ठाट नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजन छाजा।

अबहू दिस्टि मया करू छन्हिन तनु घर आउ।

मंदिल उजार होत है नव कै आनि बसाउ।।

भगवती वियोग खण्ड–356

नागमती वियोग खण्ड के बारहमासा संदर्भ में जायसी ने झूरौं, पूँछा, मूँज, दूबरि, बिहूनी, धूली, अबहू शब्दों का चयन

ऊकार आधार पर किया। अवधी की मुख्य प्रवृत्ति इकार और बहुला रूप भी स्पष्ट रूप में देख सकते हैं –

इकार प्रयोग

छाजनि	तिनुबर	बिरहा	आगरि
सिर	नाहि	लगि	बिनु
जिय	नाहिं	केहि	ररि
दूबरि	बिहूनी	नाहिं	उठि
बरिसहि	चुअहिं	बिनु	बिनु
दिस्टि	छान्हिन	मंदिल	आनि।

उकार प्रयोग

तिनुवर	तिबनु	भएउ
चुअहिं	तुम्ह	बिनु
तुम्ह	बिनु	करू

जायसी ने जनभाषा का सहज प्रयोग किया है। इनकी भाषा कबीर की भाषा के समान तद्भव शब्द बहुला है। सूफी कवि ने दर्शन और आध्यात्म के संदर्भ को भी तद्भव शब्दावली में आकर्षक अभिव्यक्ति प्रदान की है –

नवौं पंवरि पर दसौं दूआरू। तेहि पर बाज राज धरिआरू।

घरी सो बैठि गनै घरिआरी। पहर पहर सो आपनि बारी।

बजहि घरी पूजी वह मारा। घरी–घरी घरिआर पुकारा।

परा जो डाडं जगत सब डाँडा। का निचिंत मांटी कर भांडा।।

मुहम्मद जीवन जन भरन रहँट धरी की रीति।

घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।।

– सिंहलदीप वर्णन खण्ड – 42

जायसी की सरल और सुगम भाषा में जीवन रहस्य को प्रकट करने की सराहनीय क्षमता थी। सहज चिन्तन और सीधी–सीधी भाषा में आकर्षक बिम्ब–विधान जायसी की अपनी विशेषता है। इनकी काव्य भाषा की अन्य रेखांकन योग्य विशेषता है – वाक्य में लघु आकारीय पदों की योजना और साथ ही उनका असामसिक रूप। सामासिक रूप इनकी काव्य–भाषा में अत्यंत विरल है। काव्य–भाषा का सरल और बोधगम्य रूप द्रष्टव्य है।

नैन जो देखे कँवल भरनिरमर नीर सरीर।

हंसत जो देख हंस दसन ज्योति नगहीर।।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि 'श' से 'स' (शरीर–सरीर) होना अवधी की सामान्य प्रवृत्ति है, जो तुलसी की काव्य भाषा में भी मिलती है, जबकि ल से (निर्मल–निमर), म से व (कमल–कवल) और अनुनासिक रूप (कँवल) जायसी काव्य भाषा की अपनी विशेषता है। भावानुकूल भाषा–योजना में जायसी का अपना आकर्षक स्थान है। जायसी ने ठेठ

अवनी के आधार पर हिन्दी साहित्य को चिरस्मरणीय रूप से समृद्ध किया है।

मंझनकृत मधुमालती (1545 ई0) अवधी का एक चर्चित प्रेमाख्यान काव्य है। इस रचना में प्रेम का गंभीर और एकोन्मुख रूप प्रस्तुत किया गया है। हिंदी के प्रेमाख्यान काव्यों में प्रायः बहु पत्नीवादी विचारधारा दर्शायी जाती है जबकि यह कृति इसके विपरीत सामने आती है। दोहा चौपाई में रची गई यह कृति सरसता और विशिष्ट चिन्तन के लिए चर्चित है।

आलमकृत माधवानल–कामकन्दला (1584 ई0) अवाधी में रचित मार्मिक प्रेमाख्यान काव्य है। इसमें अनेक जन्मों की प्रेम घटनाओं को समायोजित कर रचना को एक विशिष्ट रूप दिया गया है। चौपाईयों, दोहे अथवा सोरठे की योजना से काव्य को लयात्मकता और गेयता प्रदान की गई है।

उसमान गाजीपुरी कृत चित्रावली (1613 ई0) प्रेमाख्यान काव्य की रचना अवधी में की गई है। इस कृति में श्रृंगा के दोनों पक्षों के साथ अर्चना–पूजा, द्वन्द्व–संघर्ष और प्रेम सौन्दर्य आदि विभिन्न पक्षों का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस रचना में अवधी के परम्परागत प्रिय छनद, चौपाईयों, दोहे को आधार रूप में स्वीकार किया गया है। इस रचना का भाषायी स्वरूप सरल और प्रवाहमय होने से विशेष रोचक है।

पुहकरकृत रसखन (1618 ई0) में राजकुमारी रम्भा और सोम की प्रेमकथा है। यह प्रेमाख्यान सरल अवधी में रचा गया है। रचना अर्चना में सूफी काव्य–परम्परा का निर्वाह किया गया है। पहुकार ने इस रचना परंपरा के बहु प्रचलित छन्दों–चौपाई और दोहे को अपनाया है।

शेखनबी कृत ज्ञानदीप ने परंपरागत प्रेमाख्यानों से भिन्न रूप देने का प्रयत्न किया है। ज्ञानदीप ने अवधी में रचित इस कृति में श्रृंगार के दोनों पक्षों के साथ योग और वीर संदर्भों को समुचित स्थान दिया है। अवधी की रचना के विशेष चर्चा में होने का मुख्य तथ्य है कि मुसलमान होने पर भी शेखनबी ने उदार दृष्टि से वेद की भरपूर प्रशंसा की है। इस रचना में भी चौपाई और दोहे को अपनाया गया है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि जायसी आदि सूफी सन्त कवियों ने अवधी के ठेठ रूप को काव्य रचना में अपना कर इसे व्यापक, माधुर्ययुक्त और आकर्षक काव्य भाषा रूप देने का अनुकरणीय कार्य किया है। अवधी का दूसरा रूप जायसी आदि सूफी कवियों की भाषा से भिन्न है।

तुलसीदास कृत रामचरित्मानस अवधी के साहित्यिक स्वरूप के अप्रतिम रचना है। तुलसी ने ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं में सशक्त रचनाएँ की हैं। हिंदी के पूर्वी और पश्चिमी दोनों रूपों में उनका समान अधिकार था। तुलसीदास की अवधी में रचित अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं –

रामलालानहछु, बरवै रामायण, रामाज्ञा प्रश्नावली।

जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामचरित्मानस आदि।

तुलसी की भाषा में संस्कृत की कोमलकांत पदावली को प्रेरक रूप से स्थान मिला है। इसी कारण है कि तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधी को 'साहित्यिक अवधी' नाम दिया जाता है। तुलसीदास को संस्कृत भाषा पर भी प्रशंसनीय अधिकार प्राप्त था। रामभक्त सहृदय कवि ने रामचरित्मानस के प्रत्येक खण्ड के मंगलाचरण में संस्कृत भाषा में श्लोकों को निबद्ध किया है।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।

मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दो वाणीविनायकौ।।

नाना पुराणनिगमागमनसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतेऽपि
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाः
भाषा निबन्धमतिमजुलमातनोति।।

इस महाकाव्य का उपसंहार भी संस्कृत श्लोक से संस्कारित है। इस रचना की काव्य–भाषा हिन्दी में 'उपकार' बहुला रूप आद्योपान्त दिखाई देता है –

बदऊँ गुरू पटुम परागा। सुरूचि सुबास सरस अनुरागा।
अभिय भूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रज परिवारू।
उघरहिं बिमल बिलोचन ही कै। मिटाहिं दोष दुख भव रजनी कं
सूझाहिं रामचरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जा जेहि खनिक।।

इन पंक्तियों के बदउँ, गुरू, पटुम, सुरूचि, सुबास, अनुरागा, रूप, उघरहिं दुःख, गुपुत पदों में 'उकार' का प्रयोग ध्वन्यात्मकता और लयात्मकता प्रदान कर रहा है।

अयोध्या काण्ड के प्रथम दोहे के विभिन्न पदों में 'उकार' के प्रयोग से साहित्यिक अवधी की लयात्मकता और भावगम्भीरता का गुरूतर होता स्वरूप द्रष्टव्य है –

श्रीगुरू चरन सरोज रज निज मनु मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुवर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि।।

अवधी में ह्रस्व स्वरों की प्रधानता होती है। 'उ' के साथ प्रयुक्त होने वाला ह्रस्य स्वर के प्रयोग से भाषा जहाँ सरलता गुण संजो लेती है वहीं भाषा में माधुर्यगुण भी अपने आकर्षक रूप में उभरता है।

निज इच्छाँ प्रभु अवरतइ सुर महि गो द्वित लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोच्छ सब त्यागी।।

(किष्किन्ध काण्ड–26)

इन पंक्तियों में निज, महि, द्विज में 'इ' का सामान्य प्रयोग है, तो अवरतइ (अवतार), लागि, (लगना), रहहि (रहना), त्यागि (त्याग) में अवधी का इकार स्वरूप है।

हिंदी साहित्य में चर्चित महाकाव्य रामचरित्मानस की काव्य–भाषा अवधी में 'श' व्यंजन के स्थान पर 'स' का प्रयोग प्रमुख भाषायी प्रवृत्ति के रूप में देख सकते हैं।

वोहि सुख लागि नारि तेहि सुख महु बेस कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत मगन।।
सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जनसुमति।।

इस पद्यांश में सिव (शिव), लवलेस (लवलेश) और खगेस (खगेश) में 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग अवधी की

भाषायी प्रवृत्ति को प्रकट करता है।

रामचरित्मानस की काव्य–भाषा में 'व' के स्थान पर 'ब' और अनुनासिक बहुल भी रेखांकन योग्य है।

1. मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर विधि करि परिपोषू।

   चले बिपिल मुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी।।

2. सरल सुभाव मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ तम फिरि आर।

   मंटतु बहुरि लघु आई। सोकु सनेह न ह्रदयँ समाई।।

द्वितीय पद्यांश में मायँ, हियँ, मनहुँ, भेटहुँ और ह्रदयँ अनुनासिक स्वरूप उल्लेखनीय है। अवधी का प्रयोग अनेक काव्य–कृतियों में काव्य–भाषा के रूप में हुआ है, किंतु तुलसीदास कृत जगप्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित्मानस से अवधी को साहित्यिकता और लोकप्रियता के उच्चतम शिखर पर पहुँचने का अवसर मिला है।

हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में अवधी का काव्य भाषा रूप बहुत कुछ सिमट गया है। कुछ कवियों की काव्य भाषा (ब्रज) में अवधी पुट मात्र दिखाई देता है। उदाहरणार्थ रीतिमुक्त कवि ठाकुर की रचना में यत्र–तत्र अवधी प्रवृत्ति देख सकते हैं।

भारतेन्दु युग में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी–बोली काव्यभाषा के रूप में उभरी है। इसी युग में अवधी को पुनः काव्यभाषा के रूप में अपनाया गया है। प्रतापनारायण मिश्र, बलभद्र मिश्र, जानकीप्रसाद ने अवधी में कुछ फुटकर रचनाओं को प्रस्तुत कर अवधी के आधुनिक युग के साहित्य का द्वार खोला है। इसके पश्चात् सीतला सिंह 'गहरवारधी', 'द्वारिका प्रसाद मिश्र', वंशीधर शुक्ल और चन्द्रभूषण त्रिवेदी, 'रमई काका' जैसे अनेक प्रमुख कवियों ने अवधी में श्रेष्ठ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'रमई काका' ने अवधी में भिनसार, बौछार, गुलछर्रा, फुहार और नेता जी आदि चर्चित रचनाओं का सृजन किया है। महाकवि तुलसीदास के पश्चात् रमई काका ने अवधी क्षेत्र में सर्वाधिक लोकप्रियता अर्जित की है। इनकी हास्य–व्यंग्य प्रधान रचनाएँ विशेष चर्चित हैं।

हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में अवधी काव्य–भाषा की समृद्ध परंपरा का विशेष योगदान है। अवधी काव्य–भाषा की दो धाराओं में महाकवि तुलसीदास और मलिक मुहम्मद जायसी का नाम शीर्षस्थ है। इन दो महान् साहित्यकारों की महाकाव्यात्मक कृतियाँ रामचरित्मानस और पद्यमावत् हिंदी साहित्य की चर्चित और अपूर्व धरोहर स्वरूप हैं।

2.3 काव्य के रूप में ब्रज भाषा का उद्भव और विकास

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी का विशेष स्थान है। हिंदी का महत्व उनके प्रयोक्ताओं की संख्या, विस्तृत भौगोलिक सीमा और समृद्धि के आधार पर है। हिंदी के विस्तीर्ण फलक पर प्रयोग होने के कारण इसे पूर्वी और पश्चिमी हिंदी मान से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पश्चिमी हिंदी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत ब्रज भाषा का अध्ययन किया जाता है। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से ब्रज निश्चय ही हिंदी की एक बोली है। इस पर गंभीर चिंतन करने से इसके साहित्यिक और महत्वपूर्ण भाषायी स्वरूप का ज्ञान होता है। इसकी साहित्यिक समृद्धि के कारण इसे 'ब्रजभाषा' की संज्ञा दी जाती है। 'ब्रज बोली' का प्रयोग स्वयं में खटकने वाला है। यहाँ यह चौंकाने वाला तथ्य है कि आज 'खड़ी–बोली' में साहित्यिक रचना की जाती है, किंतु इसे 'खड़ी भाषा' कोई नहीं कहता है, सभी खड़ी–बोली कहते हैं।

हिंदी में सबसे अधिक और समृद्ध साहित्य ब्रज में ही उपलब्ध है। काल और क्षेत्र की दृष्टि से भी ब्रज साहित्य का इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्य की सृष्टि के लिए इस भाषा का प्रयोग एक बहुत बड़े भू–भाग पर दीर्घकाल से होता है। कहा जा सकता है कि काव्य–भाषा के रूप में इसका प्रचार समस्त उत्तरी भारत में रहा

है। सोलहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य मुख्यतः ब्रजभाषा पर आधारित है। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ब्रजभाषा साहित्य का वास्तविक प्रारंभ सन् 1519 ई0 से मानते हैं। बल्लभाचार्य और विट्ठलनाथ के शिष्यों ने कृष्ण–भक्ति में विभोर होकर जो साहित्य सृष्टि की है वह ब्रजभाषा में ही है। सूरदास और अन्य अष्टछाप के कवियों ने ब्रज को साहित्य–भाषा का रूप प्रदान किया है।

ब्रजभाषा की रेखांकर योग्य कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. क्रिया, संज्ञा और विशेषणों में ओकारान्त/औकारान्त बहुल रूप।
2. कर्म तथा सम्प्रदान में को, कों, कौ कारक चिह्नों का प्रयोग।
3. सम्बन्ध कारक में मेरो, तेरो, हमरो, तिहारो आदि का प्रयोग।
4. निश्चयार्थक में के होहुतो, हुते का प्रयोग।
5. बहुवचन में 'न' प्रत्यय प्रयोग–चरनन, नैनन आदि।
6. उ का विपर्यय रूप में प्रयोग कुछ > कछु।

कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। इसकी ब्रजभाषा की भावभूमि पर माधुर्य का दिव्य रूप दिखाई देता है। सूरदास विरचित सुरसागर, सूर सरावली, साहित्य लहरी की परम निधि हैं। भक्त कवि अपने आराध्य की अर्चना करता हुआ कितना भाव–विभोर हो रहा है –

अवगति गति कछु कहत न आवै।
जयों गूंगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावैं।
सब विधि आगम विचारहिं ताते सूर सगुन–लीला पद गावैं।

कृष्ण की बालसुलभ क्रीड़ा का चित्रण अत्यंत मार्मिक और आकर्षक है –

मैया! मैं नाहि माखन खायो।
भोर भये गइयन के पीछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर वंशी वट भटक्यों सांझ परे घर आयो।
मैं बालक बहियन को छोटी छीको केहि विधि पायो।।

भ्रमरगीत का प्रसंग गोपी और उद्धव, हृदय और बुद्धि से व्यवहारिक संवाद को प्रस्तुत कर हृदय की विजय के साथ प्रेम के जीवनाधार होने का तथ्य प्रकट करता है। ब्रज भाषा के सहज प्रवाह में गोपियाँ कहती हैं –

ऊधौ मन नाही दस बीस।
एक हुतो सो गयो श्याम संग को आराधै ईश।।

जिन लताओं के झुरमुट में गोपियों के साथ कृष्ण विचरण करते थे, आज कृष्ण के मथुरागमन पर वे गोपियों के लिए अत्यंत कष्टप्रद हो गई हैं। कृष्ण के वियोग में ये लताएँ अग्नि वर्षा करती हैं। सूर की ब्रज शब्दावली का मनोहारी रूप द्रष्टव्य है –

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लता लगत अलि सीतल ऊब भई विषम ज्वाल की पुंजै।

सूरदास की ऊपर प्रस्तुत पंक्तियों में ब्रजभाषा के प्रमुख अभिलक्षण इस प्रकार देख सकते हैं –

उ	बहुल रूप (विपर्यय)	–	कुछ	>	कछु
न	प्रत्यय बहुवचन	–	बांह	>	बहियन
			बैरी	>	बैरिन
ए > ऐ		–	पावे	>	पावै
			आवे	>	आवै
ो, आकार बहुल रूप		–	खाया	>	खायो
			मेरा	>	मेरो
			छोटा	>	छोटो
			छीका	>	छीको
			पाया	>	पायो
			गया	>	गयो
ौ, औकार बहुल रूप		–	उद्धव	>	ऊधौ
			लपटना	>	लपटायौ

अष्टछाप के द्वितीय भक्त कवि कुम्भनदास हैं। इनकी कोई स्वतंत्र रचना प्राप्त नहीं है। कृष्ण भक्ति इनके जीवन का लक्ष्य था। इसीलिए इन्होंने सीकर आमंत्रण को विरक्ति भाव से ठुकराते हुए कहा था –

भक्तजन को कहाँ सीकरी सो काम।

आवत जात पन्हैया टूटी बिसरि गये हरि नाम।।

परमानन्द दास ने ब्रजभाषा के माध्यम से प्रेम के पीर का हृदयस्पर्शी काव्य प्रस्तुत किया है। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं – परमानन्द सागर, दानलीला, परमानन्द के पद आदि।

ब्रज के विरही लोग विचारे।

बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन हारे।

परमानन्द स्वामी बिन ऐसे, ज्यों चन्दा बिनु तारे।।

कृष्णदास श्री वल्लभाचार्य के चतुर्थ शिष्य थे। गुजरात प्रांत में जन्मे कवि के आराध्य कृष्ण को अपने सर्वस्व रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने सुगम ब्रज भाषा में कृष्णभक्ति काव्य की रचना की है।

मो मन गिरधर छवि पर अटक्योउ।

कृष्णदास किया प्राण निछावर यह तनज ग सिर पटक्यो।।

नन्ददास की ब्रज भाषा में अनूठा माधुर्य भाव है। इनकी लेखनी से ब्रजभाषा की सुदामारचित, भंवरगीत, रसमंजरी, रूपमंजरी, मानमंजरी आदि कृतियों की रचना हुई है। ब्रजभाषा में किया गया रोचक कृष्ण–गान द्रष्टव्य है–

जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ ते।

बीज बिना तरू जमे, मोहि तुम कहौ कहाँ तै।

इनकी रचना श्रोतिमधुर, मनोहारिणी और कोमलकान्त पदावली आधारित है।

गोविन्दस्वामी मूलतः राजस्थान प्रदेश के भरतपुर से थे। इनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। कृष्ण और ब्रज के प्रति इनके मन में अपूर्व अनुराग था। ब्रजभाषा की इनकी पंक्तियों में उक्त भाव–भंगिमा देख सकते हैं।

कहा करें बैकुण्ठहिं जाय।

जहँ नहिं कुंज लता अलि कोकिल मन्द सुगन न वायु सहाय।

गोविन्द प्रभु गोपी चरनन को ब्रजरज तजि वहँ जाय बलाय।।

छीतस्वामी स्वभाव से चंचल थे, किंतु उनमें ब्रज के प्रति मोहक लगाव और कृष्ण के प्रति अटल भक्ति थी। ब्रज भाषा में उनका भाव कितने सहज और गंभीर रूप से प्रस्तुत हुआ है –

हे विधना! ते सौं अँचरा पसारि माँगो।

जन्म–जन्म दीजो मोहि याही ब्रज बसियों।

चतुर्भुजदास अष्टछाप के अंतिम भक्त कवि हैं। इनकी कोई स्वतंत्र कृति उपलब्ध नहीं है। संगीत में इनकी विशेष रूचि थी। ये पूर्व रचित पंक्तियों की लयात्मक नकल पर कृष्णभक्ति के पद बना कर गाया करते थे।

मैया मोहि माखन मिश्री भावै।

मीठो दधि मधुधृत अपने कर क्यों नहीं मोहि खवावै।

इन पंक्तियों में 'सूर' के निम्नपद की अनुकरणात्मकता स्वतः प्रकट होती है।

''मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।

मोसो कहत मोल को लीन्हों तूं जसमति कब जायो।'' –सूर

कृष्ण भक्ति काव्यधारा में ब्रजभाषा के प्रयोग के विषय में डॉ0 कणिका तोमर ने अपने शोध–कार्य में लिखा है– ''पन्द्रहवीं शताब्दी में जो कृष्ण भक्ति का प्रवर्तन और प्रसाद हुआ, उसने बड़े व्यापक भाव से भाव–विस्तार किया और ब्रजभूमि कृष्ण भक्तों का केन्द्र बनी। यह भक्तिधारा आने वाली नई शताब्दियों तक काव्य रचना को प्रेरणा देती रही। इन भक्त कवियों में बल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों का स्थान काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है। इन्होंने एक अपूर्व साहित्य की सृष्टि की और ब्रजभाषा काव्य को एक अभिनव माधुर्य से परिपूर्ण कर दिया। उपर्युक्त दो सम्प्रदायों के अलावा गोस्वामी हित हरिवंश द्वारा प्रवर्तित राधास्वामी सम्प्रदाय और गोस्वामी हरिदास द्वारा वरही सम्प्रदाय का भी महत्व–साहित्य की दृष्टि से उल्लेख योग्य है। इन दोनों सम्प्रदायों के भक्तों और उनके शिष्यों ने ब्रजभाषा में काव्य–रचना की। यह परंपरा बहुत दिनों तक चलती रही। इसी के साथ सखी सम्प्रदाय का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस सम्प्रदाय के भक्तों में सखी भाव की साधना है। सत्रहवीं शताब्दी के बाद के भक्ति साहित्य में सखी भाव की प्रधानता दिखाई पड़ती है।''

रामकाव्य धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास का रामचरित्मानस अवधी भाषा में अवश्य है, किंतु कवितावली, गीतावली और विनय पत्रिका ब्रजभाषा में हैं। कवितावली में नवगमन प्रसंग की पंक्तियों में ब्रजभाषा का भावानुकूल स्वरूप दर्शनीय है।

सीस जटा पर बाहु विलास बिलोचन लाल तिरीछ सी भौहें।

तून सरासन बान धरे तुलसी बन मारग में सुठि सोहैं।।

सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यौं हमरो मन मोंहैं।

पूछति ग्रामबधू सिय सों कहौ सांवरे से सिख रावरे को हैं।।

ग्रामबधू के प्रश्नों के उत्तर में सीता का आदर्श रूप प्रस्तुत होता है। भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था और उनका चातुर्य, ब्रजभाषा और काव्य को भाव–गम्भीर रूप प्रदान करता है –

सुनि सुंदर बैन सुधारस साने सयानी है जानकी जानी भली।

तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाइ कछु मुसकाइ चली।।

'गीतावली' की रचना से ब्रजभाषा को सुन्दर साहित्यिक आधार मिला है। यह तुलसीकृत ब्रजभाषा का श्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसमें भक्ति रस की तरंगिणी प्रवाहित होती है –

विनती भरत करत कर जोरे।

दीनबन्धु। दीनता दीन की कबहुं परै जिनि भोरे।

तुम्ह से तुमहिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे।

तौ प्रभु चरन सरोजसपथ जीवत परि जबहि न पै हो।।

विनयपत्रिका की कुछ चर्चित पंक्तियाँ उद्धृत हैं –

तू दयालु दीनहौं, तू दानि हौं भिखारी।

हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज हारी।

मो समान आरत नहिं, आरतिहर तो सो।।

श्रीकृष्ण गीतावली तुलसीकृत भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र पर आधारित एकमात्र रचना है यह विशुद्ध ब्रजभाषा ग्रंथ है। इसमें इकसठ पद हैं। कहा जाता है इस ग्रंथ की रचना तुलसीदास ने तब की, जब वे वृन्दावन की यात्राा पर थे। यह माधुर्यगुण सम्पन्न श्रेष्ठ कृति है –

कृष्ण पर यशोदा माता का क्रोध देख कर गोपियाँ निवेदन करती हैं –

खायौ, कै खवायो, कै बिगार्‌यौ ढार्‌यो लरिकारी,

ऐसे सुत पै कोह कैसो तेरा हियो है।

निश्चय ही भक्त–शिरोमणि तुलसीदास कृत रामचरित्मानस अवधी भाषा का अनुपम ग्रंथ है, तो कवितावली, गीतावली, विनयपत्रिका और श्रीकृष्ण गीतावली ब्रजभाषा की बहुमूल्य साहित्यिक निधि है। रीतिकाल के कवियों केशव, मतिराम, घनानन्द, रसखान, सेनापति और पद्माकर आदि ने ब्रजभाषा काव्य को पर्याप्त समृद्ध किया है। रीतिकालीन ब्रजभाषा के काव्य में शृंगार की प्रचुरता अवश्य है, किन्तु इसमें भक्ति, नीति, वैराग्य, ज्योतिष और आलौकिक प्रेम आदि विषयों को सुंदर अभिव्यक्ति मिली है। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से इन प्रवृत्तियों की गतिशीलता दिखाई देती है। इस काल के कवियों ने संस्कृत ग्रंथों के आधार पर लक्षण ग्रंथों की रचना की है। उनकी लेखनी से रचित नायिका भेद की अनेक कृतियाँ प्रकाश में आई हैं। इन कवियों ने यत्र–तत्र राधा–कृष्ण का नाम लिया है, किन्तु शृंगारिकता का रंग पर्याप्त गहरा है।

केशव रीतिकालीन ब्रजभाषा के प्रथम और चर्चित कवि हैं। केशव संस्कृत के चर्चित विद्वान थे। इन्होंने छन्दों का अद्‌भुत प्रयोग करते हुए रस और अलंकार की आकर्षक विवेचना की है। रावण–अंगद संवाद में भुजंगप्रयास छनद का प्रयोग ब्रजभाषा को लयात्मक रूप प्रदान कर रहा है –

निक्‌रयो जु मैया लियो राज जाको,

दियो काढिंकै जू कहा त्रास ताको।

लिये बानराली कहौं बात तोसों,

सु कैसे बुरै राम संग्राम मोसों।।

संवादात्मक संदर्भ केशव के ब्रजभाषा–काव्य की अपनी विशेषता है। छोटे–छोटे वाक्यों में भावात्मक गंभीरता मनोहारी है।

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि? न जानिए?

काँख चाँपि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखनिये।

है कहाँ वह? बीर अंगद देवलोक बताइयो।

रघुनाथ–बान–विमान बैठि सिधाइयो।।

बिहारी की बहुज्ञता सर्वविदित है। उनके दोहों की भाषा और भाव–गम्भीरता उनकी महत्ता को चरितार्थ करती है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कहा गया है –

''सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर''

बिहारी ने ब्रजभाषा में रचित सतसई के प्रथम दोहे में रीतिकालीन भक्ति भाव को संजोया है–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा रागरि सोइ।

जा तन की झाई परै, स्यामु हरित दुति होइ।।

बिहारी ने ब्रजभाषा के दोहे में मन की एकाग्रता में सफलता और प्रसन्नता निहित होने की बात आकर्षक रूप में कही है –

या अनुरागी चित की गति, समुझे नहि कोई।

ज्यों–ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों–त्यों उज्जलु होई।।

बाह्याडम्बर से बचने के लिए कवि ने कबीर की तरह निर्भय होकर संसार को सचेत किया है–

''जप माला छाया तिलक सरै न एकौ काम।

मन कांचै नाचै वृथा, सांचै–सांचै रामु।।''

कवि ने ब्रजभाषा के दोहे की दो पंक्तियों से राजा की अंतःचक्षु को खोजने का अनुकरणीय उद्‌बोधन किया है–

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल

अली कली ही सौं बन्ध्यो, आगै कौन हवाल।।

बिहारी संयोग श्रृंगार चित्रण में सर्वोपरि हैं। उनकी सशक्त लेखनी के एक ही दोहे में बहुआयामी चित्र प्रस्तुत हुए

हैं। बिहारी द्वारा काव्य–भाषा रूप में अपनाने से ब्रज भाषा पर्याप्त समृद्ध हो गई है –

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात।

भरे भौन में करत है नैनन ही सों बात।।

घनानन्द रीतिकाल के स्वच्छन्द प्रेमधारा के प्रमुख कवि हैं। इनकी रचना में 'प्रेम की पीर' का हृदयस्पर्शी रूप है। ब्रजभाषा आधारित इनकी भावात्मक रचना से हिंदी साहित्य को एक नई दिशा मिली है –

अति सूधों स्नेह को मारग है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।

तहाँ साँचे पले तजि आपनुपौ, झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।

घन आनन्द प्यारे सुजान सुनो यहाँ एकते दूसरों आँक नहीं।

तुम कौन धो पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पर देहु छटांक नहीं।।

इन पंक्तियों में ब्रजभाषा का उकार, ओकार, औकार, अनुनासिकता बहुल रूप में और 'से' कारक चिह्न के आकर्षक प्रयोग के साथ भाव–गंभीरता दर्शनीय है।

भूषण रीतिकाल के ऐसे ब्रजभाषी कवि हैं जिनकी कविता में जिजीविषा को आकर्षक अभिव्यक्ति मिली है। भूषण ने शिवाजी को हिन्दुत्व–रक्षक–रूप में प्रतिष्ठित किया है। कवि के मन में अपने धर्म के प्रति प्रगाढ़ प्रेम और धर्म–विरोधियों के प्रति गंभीर प्रतिक्रिया का वेग है। शिवाजी के लिए चुने गए अनगिनत उपमान इस भाव के प्रमाण हैं –

इन्द्र जिभि जंम पर बाडव सुअंम पर,

रावन सदम्भ पर रघुकुलराज हैं।

पौन बारिवाह पर सुंभु रतिनाह पर,

दावा द्रुम–दंड पर चीता मृगझुण्ड पर,

भूषण बितुंड पर जैसे मृगराज हैं।

तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,

यौं ग्लेच्छ बंस पर सेर विराज हैं।।

ध्वन्यात्मकता, अन्नप्रास अलंकार, छन्दबद्धता और आकर्षक लयात्मकता में वीर रस का अनुकरणीय प्रभाव ब्रजभाषा के भूषण–काव्य की अपनी विशेषता है –

भूषन सिवा जी गाजी खग्ग सों खपाए खल,

खाने खाने खलन के खेरे भए खीस हैं।

खड़ग खजाने खरगोस खिलवत खाने,

खोसैं खोल खसखाने खूसत खबीस हैं।।

रसखान रीतिकाल के अनन्य कृष्ण भक्त हैं। उन्होंने सवैया छंद में ब्रजभाषा को सुंदर साहित्यिक रूप प्रदान किया है।

या लकुटी अरू कामरिया पर राज तिहूँ पुर की तजिडारौं।

कोटिक की कलधैंत के धाम करील के कुंजनि उपर बारौं।

आठौ सिद्ध नवौ निधि के नित नन्द की गाय चराय बिसारौं।।

रसखान को कृष्ण के दर्शन की अभिलाषा है। भक्तिकवि ब्रज भूमि को पुण्यस्थली के रूप में याद करता है। वह तन, मन और धन सब कुछ अपने आराध्य पर न्योछावर करना चाहता है–

मानुष हौं तो वही रसखन, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।

जो पशु हों तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारना।

जो खग हो तो बसेरो कौ नित कालिंदी कूल कदंब की डारन।।

ठाकुर अपने काव्य में जीवन के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए जन–जन को प्रेरित करना चाहते हैं। इनकी ब्रजभाषा में सहजता और सुगमता का अनुकरणीय स्वरूप मिलता है–

दान दया बिन दीबो कहा अरू लीबो कहां जब आपुतें मांगे।

प्रान गए रस पीबो कहा पग छीबो कहा उर प्रेम न जागे।।

नीर कहा जहिलाज तजी, गुरू कीबो कहा भ्रम दूरि न भागो।

वा जग में फिर जीबो कहा जब आंगरी लोग उठावन लागी।।

रीतिकाल का रामकाव्य भी ब्रजभाषा में रचा गया है। गुरू गोबिन्द सिंह की 'गोबिन्द रामायण' में राम का आकर्षक वर्णन उद्धरणीय है–

भेंटि भुजा भर अंक भले भरि नैन दोउ निरखै रघुराई।

गूंजत भृंग कपोलन उपर नाग लवंग रहे लव लाई।

कुजं कुरंग कलानिधि के ही कोकिल हेरी हिये हहराई।

बाल लखै छवि खाट थरै नहिबाट चलै निरखै अधिकाई।।

ब्रजभाषा साहित्य की दृष्टि से आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेन्दु हरीश्चन्द्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके साहित्य में एक ओर भाषा परंपरा का सुन्दर निर्वाह किया गया है, तो दूसरी ओर ब्रजभाषा को नया रूप भी मिला है। इस युग में ब्रजभाषा–साहित्य के अनेक प्रबन्ध एवं फुटकर काव्य लिखे गये हैं। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने ब्रजभाषा काव्य को नई भस्वरता और भावसमन्विता प्रदान की है। इनके ब्रजभाषा साहित्य में राष्ट्रीय भावना के साथ कृष्णभक्त कवियों की भाँति कृष्ण–लीला और उनके प्रभाव का मनमोहक वर्णन है –

सखी ये नैना बहुत बुरे

तब तें भये पराये हरि सो जब ते जाइ जुरे।

मोहन के रूप में बस है डालत, तलफल तनिक बुरे।

मेरी सीख प्रीति सब छाड़ि, ऐसे ये निगुरे।

जग खीझयो बरज्यौ पे ये नाहिं, हठ सों तनिक मुरे।

अमृत भरे देखत कमलन–से, विष से बुते धुरे।।

इनकी रचना में बहुप्रचलित सरल शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसलिए इनकी भाषा बोधगम्य और सरल है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने ब्रज को काव्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है, तो खड़ी–बोली को गद्य–भाषा के रूप में अपनाया है। भारतेन्दु की राष्ट्रीयता और उनका हिंदी प्रेम प्रशंसनीय है–

'निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति की मूल।'

जगन्ननाथ दास रत्नाकर के समय तक खड़ी–बोली का प्रयोग तीव्रता से चल चुका था, किन्तु इन्होंने काव्य–रचना के लिए ब्रज भाषा को ही अपनाया है। रत्नाकर का ब्रजभाषा प्रेम ही उन्हें इसमें काव्य–रचना के लए प्रेरित करता रहा है। इस समय तक खड़ी–बोली काव्य भाषा का उपयोगी स्थान ले चुकी थी।

भेजे मन–भावन के उद्धव के आवन की,

सुधि ब्रज–गावनि में पावन जबै लगी।

कहै रत्नाकर गुवालिनी की झौरि–झौरि,

दौरि–दौरि नंद–पौरि आवन तबै लगीं।।

उझकि–उझकि पद पैजनि के पंजनि पै,

पेखि–पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगी।

हमकौं लिख्यो हैं कहाँ, हमकौं लिख्यो है कहाँ,

हमकौं लिख्यो हैं कहाँ, कहन सबै लगी

रत्नाकर की ब्रजभाषा संस्कृतिनिष्ठ होकर समास बहुला बन गई है। इनके ब्रजभाषा साहित्य में अन्य ब्रजभाषा के कवियों के माधुर्य के स्थान पर ओज भाव विकसित हो गया है। 'गंगावतरण' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

कान्ह दूत कैंधों ब्रह्मदूत है पधारे आप,

धनि प्रन फेरत कौ मति ब्रजवासी की।

जैहैं जनि बिगरि न बारिधता बारिधि की

हैं बूंद बिस बिचारी की।।

बाबू गुलाबराय ने आधुनिक काल में ब्रजभाषा के प्रयोग–संदर्भ में अपना विचार 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास' में इस प्रकार व्यक्त किया ह– ''काव्य के विषय में परिवर्तन के लिए द्वार तो खुला, किन्तु काव्य की भाषा वही ब्रजभाषा रही, क्योंकि ब्रजभाषा ने साहित्य में ऐसा स्थान प्राप्त कर लिया था कि उसको काव्य–भाषा के पद से च्युत करना कठिन था। रीतिकाल के आदर्श नायक–नायिका राधा–कृष्ण ही थे। इस नाते से रीतिकाल में ब्रजभाषा का ही प्राधान्य रहा। ब्रजभाषा प्रान्तीय भाषा न रही, वरन् साहित्य की व्यापक भाषा हो गई थी। कुछ काल तक तो ब्रजभाषा का ही साम्राज्य रहा, उसके पश्चात् धीरे–धीरे कुछ समय पश्चात् लोगों ने अपनी रूचि के अनुकूल अलग–अलग क्षेत्र चुन लिये।

मिश्रबन्धु हिंदी साहित्य के इतिहासकार ओर समीक्षक रहे हैं, किन्तु इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी–बोली दोनों में ही काव्य–सृजन किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल शुद्ध ब्रजभाषा को काव्य–भाषा के रूप में अपनाने वाले प्रमुख कवि हैं। इनकी काव्य–भाषा में माधुर्य का मोहक रूप मिलता है। 'मधुश्रोत' इनकी चर्चित काव्य रचना है। हिंदी भाषा और साहित्य

के विकास में ब्रजभाषा का योगदान सर्वोपरि है। भक्तिकाल में ब्रजभाषा का प्रयोग अवधी भाषा के साथ होता रहा है, जबकि रीतिकाल की काव्यभाषा ब्रज बन गई है। आधुनिककाल के प्रथम चरण अर्थात् भारतेन्दु युग में अनेक कवियों ने ब्रज को काव्य–भाषा के रूप में अपनाया है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने भी ब्रज को काव्य भाषा के रूप में अपनाया तो खड़ी–बोली को गद्यभाषा के रूप में ग्रहण किया है। यह निर्विवाद तथ्य है कि भक्तिकाल से आधुनिक काल के भारतेन्दु युग तक की काव्य भाषा मुख्यतः ब्रज ही थी और उस समय का यह ब्रजभाषा रूप ही उस समय की हिंदी का मूल एवं मुख्य स्वरूप था।

2.4 साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी–बोली का उद्‌भव और विकास

खड़ी–बोली : नामकरण

हिंदी के सर्वमान्य स्वरूप को खड़ी–बोली नाम दिया गया है। हिंदी भाषा के इस स्वरूप की अनुकूलता अर्थात् खरेपर के कारण 'खरी–बोली' कहा गया और फिर 'खड़ी–बोली' नाम दिया गया। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि शब्द–भण्डार के प्रमुख वर्ग क्रिया की संरचना को नामकरण का आधार बनाया गया होगा अर्थात् हिंदी की समस्त क्रिया की रचना में अंतिम ध्वनि 'आ' की मात्रा 'ा' खड़ी पाई होती है; यथा–जाना, आना, धोना, खोना, चलना, फिरना, हँसना आदि। सभी क्रिया शब्द के अंत में 'ा' खड़ी पाई का प्रयोग है। इसी के आधार पर 'खड़ी पाई' का प्रयोग है। इसी के आधार पर खड़ी–बोली नामकरण की संभावना व्यक्त की गई है।

खड़ी–बोली : क्षेत्र

खड़ी–बोली का क्षेत्र मुजफ्फर नगर और दिल्ली के आसपास माना गया है। सर्वेक्षण के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि 'खड़ी–बोली' के रूप में प्रयुक्त हिंदी भाषा का रूप उक्त क्षेत्र के किसी भी गाँव में प्रयुक्त नहीं होता। गंभीर चिंतन करने से यह तथ्य सामने आता है कि हिंदी भाषा के विस्तृत क्षेत्र और उसकी विविधता देखकर जो एकरूपता देने का प्रयास किया गया, उसमें इस क्षेत्र की बोली को आधार बनाया गया है। 'खड़ी–बोली' का उक्त क्षेत्र वास्तव में पश्चिमी हिंदी की कौरवी बोली का क्षेत्र है। इस प्रकार खड़ी–बोली के विषय में कहा जा सकता है –''कौरवी बोली के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की बोधगम्यता के लिए जो संकल्पनात्मक रूप विकसित हुआ, उसे खड़ी–बोली नाम दिया गया है।

खड़ी–बोली का प्रभाव धीरे–धीरे विस्तृत होता जा रहा है। वर्तमान में मेरठ, मुजफ्फर नगर, बिजनौर, सहारनपुर, हरिद्वार, गाजियाबाद, मुरादाबाद और दिल्ली तक देख सकते हैं। हरियाणा के करनाल, यमुना नगर, पानीपत, सोनीपत के कुछ भागों में खड़ी–बोली का स्पष्ट प्रभाव मिलता है।

खड़ी–बोली : उद्‌भव

हिंदी में गद्य–रचना के विकास–काल से खड़ी बोली का प्रभावी रूप में विकास हुआ है। आदि काल में डिंगल–पिंगल में रचना होती थी, तो मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा काव्य–रचना की आधार भाषा थी। आधुनिक युग में हिंदी का यही रूप साहित्य–सृजन का आधार बना है। हिंदी भाषा में एकरूपता और बोधगम्यता बढ़ाने का प्रयास एक लंबे समय से चल रहा था। जैन, सिद्ध और नाथ साहित्य में खड़ी–बोली का प्रारंभिक रूप देख सकते हैं। संत कवियों की भाषा में खड़ी–बोली का प्रभाव सामने आता है।

''पीछे लागा जाइ था, लोक वेद के साथ।
आगे ते सतगुरु मिला, दीपक दीया हाथ।''

इस दोहे में शब्दों का तद्‌भव रूप और कारक–चिह्नों का प्रयोग खड़ी–बोली के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। अमीर खुसरो के काव्य में खड़ी–बोली का प्रभावी रूप सामने आता है। डॉ0 भोलानाथ तिवारी, अमीर खुसरों को

खड़ी–बोली का प्रारंभिक और श्रेष्ठ कवि मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अमीर खुसरों को खड़ी–बोली में रचना करने वाले सहृद शुरूआती साहित्यकार की मान्यता दी है।

अकबर के दरबार के दरबारी कवियों में भी खड़ी–बोली की झलक रूप में दिखाई देती है। इन कवियों में 'रहीम' का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

''एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।

रहिम सींचहि मूलहिं, फूलहिं फलहिं अधाय।''

सत्रहवीं शताब्दी में रचित जटमल कृत गोरा–बादल की कथा खड़ी बोली की पहली रचना मानी गई है। भक्तिकाल के गद्य में ब्रज, अवधी और राजस्थानी का प्रभाव दिखाई देता है। रीतिकाल के गद्य पर ब्रज और फारसी का प्रभाव अवश्यमेव पड़ा है। राम प्रसाद निरंजनी कृत अट्ठारहवीं शताब्दी की भाषायोग वशिष्ठ खड़ी–बोली की प्रथम प्रमाणिक रचना मानी गई है। आचार्य शुक्ल ने रामप्रसाद निरंजनी को खड़ी–बोली का प्रौढ़ रचनाकार घोषित किया है। इनकी भाषा योग व शिष्य का एक गद्यांश अवलोकनीय है –

''जो पुरुष अभिमानी नहीं है, वह शरीर के इष्ट–अनिष्ट में राग–द्वेष नहीं करता। क्योंकि इसकी शुद्ध वासना है।'' इसी समय से खड़ी–बोली के प्रयोग की एक परंपरा बनी और साहित्य–सृजन की आधार बनी।

खड़ी–बोली : विकास

19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही खड़ी–बोली का प्रभाव विकसित हुआ। मुंशी सदासुख लाल और इंशा अल्लाह खाँ ने खड़ी–बोली को साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की अनुप्रेरक भूमिका निभाई। सदासुख लाल की हिंदी सरल तथा वाक्य रचना छोटी–छोटी होने के कारण विशेष लोकप्रिय हुई। इनकी भाषा में सुंदर संप्रेषणीयता है। इंशा अल्लाह खाँ की 'रानी कोतकी की कहानी' ने अपनी लोकप्रियता के आधार खड़ी–बोली के स्वरूप को जन–सामान्य तक पहुँचाया। ये अपनी भाषा को सरल तथा शुद्ध रूप देना चाहते थे, किन्तु उनका चमत्कारिक और सौंदर्य प्रिय मन ऐसा न कर सका। इनकी भाषा में यत्र–तत्र मुहावरों के साथ हास्य–व्यंग्य के पुट मिल जाते हैं।

सन् 1803 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कलकत्ते में हुई। इस कॉलेज में जॉन गिलक्रास्ट हिंदी और उर्दू पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। इस कॉलेज में अंग्रेजी के साथ भारतीय भाषाओं के अध्यापन की भी व्यवस्था की गई। लल्लूलाल ने जान गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से वर्षों तक इस कॉलेज से जुड़कर शकुंतला, प्रेमसागर, बैताल, पचीसी, और सिंहासन बतीसी आदि कृतियों की रचना की है। इनकी रचनाएँ शुद्ध खड़ी–बोली में न होकर ब्रज अथवा उर्दू प्रभावित हैं। इनकी भाषा में संस्कृत के साथ अरबी, फारसी, ब्रज का प्रभाव है। इनके गद्य में काव्यात्मकता भी दिखाई देती है। लोकोक्ति और मुहावरों का यत्र–तत्र प्रयोग है। हिंदी के लगभग सभी कारक–चिह्नों– ने, से, को, का, के, की, में और पर आदि के प्रयोग मिलते हैं।

फोर्ट विलियम कॉलेज में कार्यरत लल्लूलाल के समैकालीन पं0 सदल मिश्र का कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने नासिकेतोपाख्यान' और रामचरित' नाम से मशः 'कठोपनिषद्' और अध्यात्म रामायण' का हिंदी में अनुवाद किया। इनकी भाषा पर पूर्वी हिंदी का प्रभाव है, किन्तु तत्सम बहुला भाषा होने से खड़ी–बोली के विकास में एक सीमा तक सहयोगी सिद्ध होती है। इनकी भाषा में खड़ी–बोली के अनुरूप कारक–चिह्नों का प्रयोग है। ब्रजभाषा का वचन परिवर्तन रूप यत्र–तत्र मिल जाता है; यथा–बात (एक वचन) > बातन (बहुवचन)। भोजपुरी–अवधी शब्द भी कहीं–कहीं प्रयुक्त हुए हैं। इनकी रचना में छोटे–बड़े सभी प्रकार के वाक्य मिलते हैं। इनके वाक्य गद्यात्मक वाक्य–रचना सिद्धांत पर प्रायः शिथिल हैं, किंतु कर्ता, कर्म, क्रिया का क्रमशः प्रयोग मिलता है और गद्य में काव्यात्मक रूप नहीं है। हिंदी गद्य के विकास–आधार पर खड़ी–बोली को दिशा देने में 19वीं शताब्दी के इन लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन विशेष रूप उल्लेखनीय है।

''गद्य की एक साथ परंपरा चलाने वाले उपयुक्त, चार लेखकों में से आधुनिक हिंदी का पूरा–पूरा आभास मुंशी सदासुख लाल और सदल मिश्र की ही भाषा में मिलते हैं। व्यवहारोपयोगी इन्हीं की भाषा ठहरती है। इन दो में भी मुंशी सदासुख लाल की साधु भाषा अधिक महत्व की है। मुंशी सदासुख लाल ने लेखनी भी चारों से पहले उठाई। अतः गद्य का प्रवर्तन करने वालों में उनका विशेष स्थान समझना चाहिए।''

ईसाईयों का खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार में विशेष योगदान रहा है। अंग्रेजी शासन में ईसाई धर्म–प्रचार जोरों पर था। उनके द्वारा जन–जन तक ईसाई धर्म–साहित्य को पहुंचाने के लिए उसे खड़ी–बोली में अनुवाद किया गया। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर वेदांत–सूत्रों का खड़ी बोली में हिंदी भाष्य प्रस्तुत किया। ये राष्ट्रीय आंदोलन और हिंदी के प्रबल प्रेमी थे। इन्होंने सन् 1829 में 'बंगदूत' समाचार–पत्र का प्रकाशन कर हिंदी प्रचार–प्रसार में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सामाजिक और राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़े सितारे हिंद राजा शिव प्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह का नाम खड़ी–बोली प्रयोग–संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सितारे हिंदी राजा शिव प्रसाद उर्दू प्रभावित हिंदी अर्थात् हिंदुस्तानी के पक्षधर थे। उनकी चर्चित मुख्य रचनाएँ हैं– 'राजा भोज का सपना', 'मानव धर्मसार'। राजा भोज का सपना' में खड़ी–बोली का उपयोगी रूप है। राजा राजा शिव प्रसाद सिंह ने शिक्षा मं हिंदी को उचित स्थान दिलाने के लिए प्रयत्न किया। हिंदी शिक्षा की पुस्तकें लिखवाई। राजा लक्ष्मण सिंह खड़ी–बोली को श्रेष्ठ रूप देने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में आगरा से प्रजा–हितैषी' समाचार–पत्र का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' और 'मेघदूत' का खड़ी–बोली में अनुवाद किया। इनकी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

समाज–सुधारक नवीन चन्द्र राय ने उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में पंजाब में रह कर शिक्षा जगत् के विभिन्न पाठ्यक्रमों की पुस्तकें खड़ी–बोली में लिखीं और अपने साथियों से लिखवाई। पंजाब में ही श्रद्धाराम फुल्लौरी ने अपने मनमोहक स्वर में रामायण और महाभारत की कथा हिंदी में सुनाई। ओम जै जगदीश हरे. ...की ध्वनि से हिंदी का प्रचार हुआ।

महर्षि दयानन्द ने अपना व्याख्यान हिंदी में देकर खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार को बल दिया है। उन्होंने 'सत्यार्थ–प्रकाश' की रचना हिंदी में करके एक ओर समाज–सुधार आन्दोलन को जन–सामान्य से जोड़ा है, तो दूसरी ओर खड़ी–बोली के प्रयोग के सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। सन् 1875 में, बम्बई में आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द के द्वारा हुई। आर्य समाज से खड़ी–बोली प्रयोग को उत्तम आधारभूमि मिली है। आधुनिक हिंदी के जन्मदाता भारतेन्दु हरीश्चन्द्र हिंदी के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने मुक्त कंठ से कहा है –

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूला,

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिअे न हिय को सूल।''

इनकी कविता में जनभाषा का स्वरूप अवश्य दिखाई देता है, किंतु उनके द्वारा रचित गद्य खड़ी–बोली के आधार पर सामने आता है। उनके रामकालीन साहित्यकारों ने खड़ी–बोली को गंभीरता से अपनाया है। भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने हिंदी प्रयोग में गति लाते हुए हिंदी को दिशा प्रदान की है। उन्होंने 1868 में 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका, 1873 में हरीश्चन्द्र मैगजीन नामक मासिक पत्रिका निकाला। उसका नाम बाद में हरीश्चन्द्र चन्द्रिका हो गया। इसके बाद भारतेन्दु हरीश्चन्द्र ने खड़ी–बोली में अनेक नाटकों की रचना की और निबंध लिखे। खड़ी–बोली में अनेक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होनी शुरू हुई। पं0 प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, पं0 राधाकृष्ण गोस्वामी आदि ने साहित्य और पत्रकारिता में खड़ी–बोली को प्रतिष्ठित किया।

सन् 1893 में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना से खड़ी–बोली के प्रचारार्थ सुदृढ़ आधार मिला। बाबू श्याम सुंदर दास और मदन मोहन मालवीय आदि हिंदी प्रेमियों से इस संस्था की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही है। इसके पश्चात् खड़ी–बोली प्रयोग में हिंदी साहित्य सम्मेलन, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद; प्रार्थना सभा, बम्बई आदि साहित्यिक संस्थाओं के साथ ब्रह्म समाज आर्य समाज, सनातन धर्म सभा आदि सामाजिक संस्थाओं का हिंदी–प्रेम विशेष महत्वपूर्ण रहा है।

हिंदी प्रचार–प्रसार में समय–समय पर प्रकाशित होने वाले पत्र और पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही है। इनमें कुछ प्रमुख हैं– उदन्त मार्तण्ड, बंगदूत, बनारस अखबार, 'प्रजा–हितैषी', 'कविवचन सुधा', 'प्रदीप सुधाकर, आदि। खड़ी–बोली के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान मुद्रण–व्यवस्था का रहा है। जैसे–जैसे हिंदी–प्रेम बढ़ा, मुद्रण का आधार मिला, वैसे–वैसे हिंदी–प्रसार को गति मिलती गई है। खड़ी–बोली के माध्यम से सम्प्रेषणीयता का विकसित रूप सामने आया है। द्विवेदी युग से हिंदी–साहित्य सृजन मुख्यतः खड़ी–बोली में होने लगा।

''मानस भवन में आर्य जन जिसकी उतारें आरती।
भगवान भारत वर्ष में गूंजे हमारी भारती।। – गुप्त

छायावाद में प्रवेश कर खड़ी–बोली को आकर्षक रूप मिला।

''ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक–दूसरे से न मिल सकें,
यह विडम्बना है जीवन की।।''

– प्रसाद

इसके पश्चात् खड़ी–बोली हिंदी साहित्य–सृजन का आधार बन गई। वर्तमान समय में 'खड़ी–बोली' को हिंदी के पर्याय रूप में ग्रहण किया जाने लगा है। संविधान में हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार करने हेतु हिंदुस्तानी (उर्दू मिश्रित हिंदी) और हिंदी (संस्कृत विकसित–परिनिष्ठित हिंदी) का विवाद चलता रहा है, किंतु इसका भी निश्चय अंत में– संविधान में हिंदी राजभाषा और देवनागरी उसकी लिपि बनी।''

वर्तमान समय में खड़ी–बोली की पर्याय बनी हिंदी (मानक हिंदी) न केवल भारत में प्रयुक्त हो रही है, वरन् गयाना, सूरीनाम, मॉरीशस, ट्रिनीडाड, टुबैगो, फिजी, कनाडा और अमेरिका आदि देशों में प्रयुक्त हो रही है।

अध्याय –3

हिंदी का भाषिक स्वरूप

3.1 हिंदी स्वनिम का वर्गीकरण

मनुष्य में विविध ध्वनियों के उच्चारण की क्षमता होती है। इसका ज्ञान वार्तालाप के समय होता है और विविध गानों के अरोह–अवरोह के संदर्भ से ध्वनि की विविधता का सुस्पष्ट ज्ञान होता है। भाषा विज्ञान में मानव द्वारा प्रयुक्त उन ध्वनियों का ही वर्गीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है, जिनका भावाभिव्यक्ति में महत्व होता है।

ध्वनि–भेद – सभी भाषाओं में स्वर तथा व्यंजन दो प्रकार की ध्वनियों होती हैं। ध्वनि सम्बन्धी यह विभाजन अत्यंत पुराना है। आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में स्वर और व्यंजनों के दो वर्गों का उल्लेख किया है – ''स्वयं राजन्ते स्वराः। अन्वग् भवति व्यंजनम् इति।'' (महाभाष्य 1/2/29.30) अर्थात् स्वर ये ध्वनियाँ हैं जो स्वयं उच्चारित हो सकती हैं। व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जो स्वरों की सहायता के बिना उच्चारित नहीं हो सकती।

पतंजलि ने स्वरों की प्रधानता और व्यंजनों की अप्रधानता को भी रेखांकित किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि उनके अनुसार व्यंजनों का उच्चारण स्वर के सहयोग के बिना नहीं हो सकता है।

बलाक तथा ट्रेगर ने स्वर और व्यंजन को इस प्रकार परिभाषित किया है – "A vowel is a sound for whose production the oral pass age is unobstructed, so that the air current can flow the lungs to the lips and beyond without beirn stopped." अर्थात् जिन ध्वनियों के उच्चारण में, मुख में किसी प्रकार का अवरोध न हो, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं। ऐसे में फेफड़े से आने वाला वायु–प्रवाह ओष्ठ और उसके आगे कहीं भी अवरूद्ध नहीं होता है।

"A consonant, conversely, is a sound for whose production the air current is completely stopped by an occlusion of the larynx or the oral passage.

1. स्वर का उच्चारण अकेले सम्भव है, किन्तु स्, ज्, श् व्यंजन अपवाद हैं।
2. सभी स्वरों का उच्चारण देर तक कर सकते हैं, किन्तु व्यंजन में केवल संघर्षी व्यंजन ऐसे होते हैं।
3. ई तथा ऊ को छोड़कर सभी स्वरों के उच्चारण में आवाज मुख–विवर में गूँजकर सीधे निकलती है, किंतु व्यंजन में अवरोध होता है।
4. प्रायः सभी स्वर व्यंजनों की अपेक्षा अधिक मुखर होते हैं।
5. ऑसिलोग्राफ से लहर संबंधी प्रयोग करने पर ज्ञात होता है कि स्वर–लहरें व्यंजन से भिन्न होती हैं, किंतु र्, म् दोनों के मध्य आने वाली ध्वनियाँ हैं।

स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों को सरल और वैज्ञानिक रूप से इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं –

स्वर – वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के समय निःश्वास की वायु अवरोध रहित अवस्था में अबोध गति से बाहर आती है।

व्यंजन – वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के समय निःश्वास की वायु कहीं न कहीं बाधित होकर बाहर आती है।

स्वर परिभाषा और वर्गीकरण

जिन ध्वनियों के उच्चारण में अन्य किसी ध्वनि का सहयोग आवश्यक न हो उच्चारण अबोध गति से जितनी देर चाहें कर सकते हैं, उन्हें स्वर ध्वनि कहते हैं; यथा– अ, इ, उ आदि।

	अग्र	मध्य	पश्च
सर्वोच्च	ई		ऊ
उच्च	ठ		ड
निम्नतम उच्च	ए		ओ
उच्चत्तर मध्य	ऐ		औ
निम्नत्तर मध्य		अ	
निम्न		आ	

हिंदी स्वरों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं –

1. जीभ का कौन–सा भाग करण का कार्य करता है– फेफड़े से बाहर आने वाली निःश्वास वायु से मुख–विवर के विभिन्न रूपों के कारण विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण होता है। स्वर उच्चारण–प्रक्रिया में जीभ का अग्र, मध्य अथवा पश्च भाग उठकर सहायक सिद्ध होता है। इसी आधार पर हिंदी स्वरों को तीन मुख्य वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

   (क) अग्र स्वर – इ, ई, ए, ऐ।

   (ख) मध्य स्वर – अ।

   (ग) पश्च स्वर – उ, ऊ, ओ, औ।

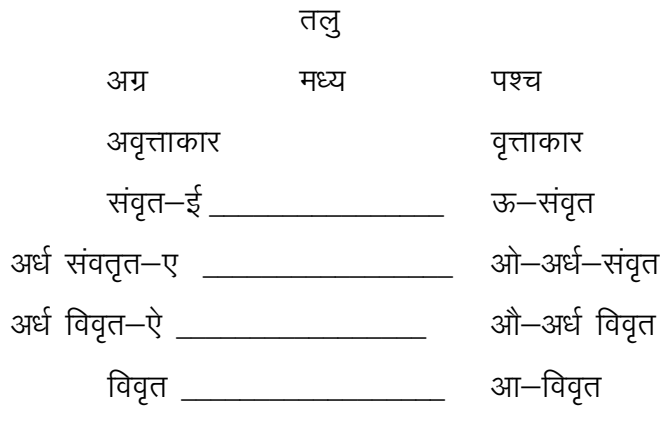

हिन्दी स्वर : वर्गीकरण

2. जीभ का व्यवहृत भाग उठता है– स्वर उच्चारण प्रक्रिया में जीभ के अल्पाधिक रूप से उठने के कारण मुख की खुलने वाली स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन कर सकते हैं –

   (क) विवृत–जब मुख–विवर पूरा खुला हो, जीभ निश्चेष्ट पड़ी हो; यथा–आ, औ,

(ख) अर्ध–संवतृत – जब मुख–विवर लगभग पूरा खुला हो जीभ एक तिहाई उठी हो; यथा –ऐ, औ।

(ग) अर्ध–संवृत – जब मुख–विवर संकरा हो, जीभ दो तिहाई उठी हो; यथा– ऐ, ओ।

(घ) संवृत – जब मुख–विवर अत्यंत संकरा हो, जीभ बहुत ऊपर उठी हो या सर्वाधिक चंचल हो; यथा– इ, ई, उ, ऊ।

3. ओष्ठों की स्थिति के अनुसार – उच्चारण में ओठों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्चारण हेतु निःश्वास का भीतरी नियंत्रण जीभ के द्वारा होता है, तो उनका बाहरी नियंत्रण ओठों के द्वारा होता है। ओठों की स्थिति के अनुसार स्वरों का विभाजन इस प्रकार कर सकते हैं –

(क) वृत्ताकार – इसे वृतमुखी स्वर भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ अल्पाधिक रूप में वृत्ताकार खुलते हैं। ऐसे स्वर हैं– उ, ऊ, ओ, औ।

(ख) अवृत्ताकार – इसे अवृतमुखी भी कहते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ खुलकर वृत्ताकार रूप नहीं धारण करते हैं वरन् सामान्य रहते हैं। ऐसे स्वर हैं – इ, ई, ए, ऐ।

(ग) उदासी – जिन स्वरों के उच्चारण में दोनों ओंठ खुलकर लगभग उदासी रहते हैं; यथा – अ।

4. मात्रा के अनुसार – उच्चारण में लगने वाले समय को मात्रा कहते हैं। मात्रा के आधार पर स्वरों का स्वरूप निर्धारित किया जाता है। संस्कृत में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत तीन प्रकार के स्वर मिलते हैं। हिंदी में इनकी संख्या मुख्यतः तीन हैं– ह्रस्व–अ, इ, उ; दीर्घ–आ, ई, ऊ और प्लुत–ओ (ओउम)।

5. कोमल तालु और अलिजिह्वा की स्थिति के अनुसार– ये दोनों अंग कभी नासिक–विवर के मार्ग को पूरी तरह बन्द कर देते हैं, जिससे हवा केवल मुख मार्ग से निकलती है। ऐसे में उच्चारित होने वाला स्वर मौखिक होता है। ये अंग कभी मध्य स्थिति में रहते हैं, जिससे वायु मुख तथा नासिका दोनों ही मार्गों से निकलती है। ऐसी ध्वनि को अनुनासिक ध्वनि कहते हैं। इस तरह स्वरों के दो वर्ग बना सकते हैं।

(क) मौखिक – अ, आ, ए आदि सभी स्वर।

(ख) अनुनासिक – आँ, एँ।

अनुनासिक स्वर ध्वनियाँ भी दो प्रकार की होती हैं –

पूर्ण अनुनासिक – पूर्ण अनुनासिकता को अनुनासिक चिह्न द्वारा लिपिबद्ध किया जाता है; यथा – हाँ > आँ एँ।

अपूर्ण अनुनासिक – स्वरों की अपूर्ण अनुनासिक नासिक्य व्यंजनों के आधार पर होती है। नासिक्य व्यंजन के पूर्व का स्वर उच्चारण में आंशिक अनुनासिक हो जाता है। लेखन में अपूर्ण अनुनासिक चिह्न नहीं लगाया जाता है; यथा– राम > रॉम् > र् आँ म्।

6. स्वर–तंत्रियों की स्थिति के आधार पर – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में स्वर–तंत्रियाँ भिन्न–भिन्न स्थिति धारण करती हैं। इस आधार पर भी स्वरों को वर्गीकृत कर सकते हैं। हिंदी के सभी स्वर मूलतः घोष है। विशेष प्रयोग–स्थिति में और कुछ अन्य भाषाओं में अघोष स्वर मिलते हैं।

(क) घोष – जिन स्वरों के उच्चारण में स्वर–तंत्रियों के निकट आने के कारण वायु घर्षण के साथ बाहर आती है, उन्हें घोष कहते हैं। प्रायः सभी स्वर घोष होते हैं।

(ख) अघोष – जिनके उच्चारण के समय स्वर–तंत्रियों के एक–दूसरे से दूर होने के कारण वायु बिना घर्षण

के, सरलता से बाहर आती है, उन्हें अघोष स्वर कहते हैं; यथा – विभिन्न बोलियों में प्रयुक्त इ, उ, ए विशिष्ट ध्वनियाँ।

(ग) जपित – जब बीमार या कमजोर व्यक्ति फुसफस करता है, तो वायु स्वर–तंत्रियों से साधारण संघर्ष करती हुई बाहर आती है। इस प्रकार से उच्चरित स्वर ध्वनियाँ जपित होती हैं।

7. मुख की मांसपेशियों की दृढ़ता के आधार पर – विभिन्न स्वरों के उच्चारण में कभी तो मुख की मांसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं, तो कभी शिथिल हो जाती हैं। कुछ ध्वनियों के उच्चारण–समय मांसपेशियों में हल्की दृढ़ता होती है। इस आधार पर स्वरों के शिथिल, दृढ़ और मध्यम तीन वर्ग बनाए जा सकते हैं –

   (क) शिथिल – अ, इ, उ।

   (ख) दृढ़ – औं, ऑ।

   (ग) मध्यम – ए, ओ।

8. संयुक्त के आधार पर – स्वरों के एक स्थान और एक से अधिक स्थानों के उच्चारण को ध्यान में रखकर उन्हें दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

   (क) मूल स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्थान पर रहती है, यथा – अ, आ, इ, ई इत्यादि।

   (ख) संयुक्त स्वर – जिनके उच्चारण में जीभ एक स्वर उच्चारण स्थान से दूसरे उच्चारण स्थान पर पहुँच जाती है, तो संयुक्त स्वर होते हैं; यथा – ए > अइ, ओ > अउ, ऐ > अए, औ > अओ आदि।

3.1.2 व्यंजन : परिभाषा और वर्गीकरण

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण में स्वर ध्वनि का सहयोग अनिवार्य हो, निःश्वास की वायु मुख–विवर से, अबोध गति से, निकल नहीं पाती है वरन् बाधित होने के कारण घर्षण करती हुई बाहर आती है। व्यंजनों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों पर करते हैं –

स्थान / प्रयत्न	स्वर यंत्र मुख	कंठ्य	तालव्य	मूर्द्धन्य	दन्त्य	वर्त्स्य	दन्तोष्ठ	द्वयोष्ठ्य
स्पर्श		क् ख् ग् घ्		ट् ठ् ड् ढ्	त् थ् द् ध्			प् फ् ब् भ्
स्पर्श			च् छ्					
संघर्षी			ज् झ्					
नासिक्य		ङ्	ञ्	ण्	न्	न्		म्
पार्श्विक				ळ्		ल्		
प्रकंपी					र्			
उत्क्षिप्त				ड् ढ्				
संघर्षी	ह्	ख़ ग़	श्		स्	स् ज़	व् फ्	
अर्धस्वर			य्					व्

(क) प्रयत्न के आधार पर – इस आधार पर व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. स्पर्श – जनके उच्चारण–समय में मुख दो भिन्न अंग–दोनों ओष्ठ, नीचे का ओष्ठ और ऊपर के दांत, जीभ की नोक और दाँत आदि एक–दूसरे से स्पर्श की स्थिति में हों, वायु उनको स्पर्श करती हुई बाहर आती हो, तो उन्हें व्यंजन कहेंगे; यथा– क्, ट्, त् तथा प् वर्गों की प्रथम चार ध्वनियाँ।
2. संघर्षी – जिनके उच्चारण में मुख के दो अवयव एक–दूसरे के निकट आ जाते हैं और वायु निकलने का मार्ग संकरा हो जाता है, तो वायु घर्षण करके निकलती है, उन्हें संघर्षी व्यंजन कहते हैं; यथा– ख्, ग्, ज्, फ्, श्, ष्, स् आदि।
3. स्पर्श संघर्षी – जिन व्यंजनों के उच्चारण में पहले स्पर्श फिर घर्षण की स्थिति हो; यथा– च्, छ्, ज्, झ्।
4. नासिक्य – जिन व्यंजनों के उच्चारण में दांत, ओष्ठ, जीभ आदि के स्पर्श के साथ वायु नासिक मार्ग से बाहर आती है, उन्हें नासिक्य ध्वनि कहते हैं; यथा– पाँचों वर्गों की पाँचवीं (ङ्, × ण्, न् म्) ध्वनियाँ।
5. पार्श्विक – जिन व्यंजनों के उच्चारण में मुख के मध्य दो अंगों के मिलने से वायु–मार्ग अवरूद्ध होने के बाद जीभ के एक या दोनों ओर से वायु बाहर आती है; उन्हें पार्श्विक कहते हैं; यथा– ल्।
6. लुण्ठित – जिनके उच्चारण में जीभ बेलन की भांति लपेट खाती है; यथा– र्। 'र्' ध्वनि यदा–कदा प्रकम्पित रूप में भी प्रयुक्त होती है।
7. उत्क्षिप्त – जिनके उच्चारण में जीभ की नोक झटके से तालु को छूकर वापस आ जाती है; उन्हें उत्क्षिप्त व्यंजन कहते हैं; यथा – ड़, ढ़।
8. अर्ध–स्वर – जिन ध्वनियों की उच्चारण प्रकृति स्वर और व्यंजन के मध्य होती है, उन्हें अर्ध–स्वर कहते हैं। इनका उच्चारण स्वर के समान ही शुरू होता है, किन्तु व्यंजन के निकट होता है। स्वरों के समान इनकी मात्रा भी नहीं होती है, इसलिए इन्हें व्यंजनों में रखते हैं; यथा– य्, व्।

(ख) स्थान के आधार पर – इस आधार से व्यंजनों को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. स्वर यंत्रमुखी – जिन व्यंजनों का उच्चारण स्वर–यन्त्रमुख से हो; यथा– ह्, अंग्रेजी का एच (H) है।
2. जिह्वमूलीय – जिनका उच्चारण जीभ के मूल भाग से होता है; यथा– क्, ख्, ग्।
3. कण्ठ्य – जिन व्यंजनों का उच्चारण कण्ठ से होता है, उन्हें कण्ठ्य कहते हैं। इनके उच्चारण में जीभ का पश्च भाग कोमल तालु को स्पर्श करता है; जैसे –कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्)।
4. तालव्य – जिनका उच्चारण जीभ की नोक या अग्रभाग के द्वारा कठोर तालु के स्पर्श से होता है, जैसे– च्, छ्, ज्, × श्।
5. मूर्द्धन्य – जिन व्यंजनों का उच्चारण मूर्धा से होता है। इस प्रक्रिया में जीभ मूर्धा का स्पर्श करती है; जैसे–ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, ष्।
6. वत्सर्य – जिन ध्वनियों का उद्भव जीभ के द्वारा वर्त्स या ऊपर मसूढ़े के स्पर्श से हो; यथा– न्, ल्, र्।
7. दन्त्य – जिन व्यंजनों का उच्चारण दाँत की सहायता से होता है। इसमें जीभ की नोक ऊपर दाँत–पंक्ति का स्पर्श करती है; यथा– त्, थ्, द्, ध्, न्, ल्, स्।
8. ओष्ठ्य – दोनों ओष्ठों के मिलने से उच्चारित होने वाली ध्वनि को ओष्ठ्य व्यंजन कहते हैं; यथा –प्, ़फ्, ब्, भ्, म्।

(ग) स्वर–तन्त्रियों के आधार पर – इस आधार पर व्यंजनों के दो वर्ग बना सकते हैं –

1. घोष – जिन ध्वनियों के उच्चारण–समय में स्वर–तंत्रियाँ एक–दूसरे के निकट होती हैं और निःश्वास वायु निकलने से उसमें कम्पन हो। प्रत्येक वर्ग की अन्तिम तीन (तीसरी, चौथी, पाँचवीं) ध्वनियाँ; यथा – ग्, घ्, ङ्, ज्, झ्, ञ् आदि।
2. अघोष – जिनके उच्चारण समय स्वर–तंत्रियों में कम्पन न हो। प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो (पहली, दूसरी) ध्वनियाँ; यथा– क्, ख्, च्, छ् आदि।

(घ) प्राणत्व के आधार पर – प्राण का अर्थ है– वायु। इस आधार पर व्यंजन के दो वर्ग बना सकते हैं –

1. अल्पप्राण – जिनके उच्चारण में सीमित वायु निकलती है, उन्हें अल्पप्राण व्यंजन कहते हैं। ऐसी ध्वनियाँ 'ह' रहित होती हैं। प्रत्येक वर्ग की प्रथम, तृतीय और पंचम व्यंजन ध्वनियाँ; यथा – क्, ग्, ङ्, ज्, च्, ञ् आदि।
2. महाप्राण – जिनके उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक वायु निकलती है। ऐसी ध्वनि ह्–युक्त होती है; जैसे – ख = कह् (kh), घ = (Gh) आदि।

(ङ) अनुनासिकता के आधार पर – मुख और नासिका मार्ग से निकलने वाली निःश्वास वायु के आधार पर व्यंजनों को दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. मौखिक – जिसक उच्चारण में वायु मुख–मार्ग से निकलती है; यथा – क्, च्, ट्, त् आदि।
2. नासिक्य – जिसमें निःश्वास वायु मुख्यतः नासिका मार्ग से बाहर आती है; यथा– ङ्, ञ्, ण्, न्, म्।

(च) संयुक्तता के आधार पर – इस आधार पर व्यंजनों के तीन वर्ग बना सकते हैं –

1. असंयुक्त – इन्हें मूल व्यंजन भी कहते हैं। जो व्यंजन अकेले स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त हों; यथा – क्, ख्, च्, त् आदि।
2. संयुक्त – जब दो भिन्न व्यंजन ध्वनियाँ एक साथ प्रयुक्त हों। इनमें एक अर्ध और दूसरी पूर्ण ध्वनि होती है; यथा– क्त (रक्त), प्य (प्यारा), न्त (अन्त) आदि।
3. द्वित्व – जब किसी एक व्यंजन का एक अर्थ तथा दूसरा पूर्ण रूप एक साथ प्रयुक्त होता है; यथा – त्त (पत्ता), प्प (गप्प), क्क (पक्का) आदि।

(छ) मांसपेशियों की दृढ़ता के आधार पर– विभिन्न व्यंजनों के उच्चारण में मुख की मांसपेशियों की स्थिति में भिन्नता होती है। इस आधार पर व्यंजनों के तीन वर्ग बना सकते हैं–

1. दृढ़ – जिनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियाँ दृढ़ हो जाती हैं; यथा – ड्, ढ्, स्, ट्
2. मध्यम – जिनमें मुख की मांसपेशियाँ न तो विशेष दृढ़ होती हैं, न ही विशेष शिथिल होती हैं; यथा – च्, श्।
3. शिथल – जिनके उच्चारण में मुख की मांसपेशियाँ शिथिल होती हैं; यथा– प्, क्।

3.3 हिन्दी शब्द–संरचना

शब्द भंडार के सम्बन्ध में किया गया विवेचन अपना अभिप्राय बोध कराने में अधूरा ही रहता जब तक शब्दों की संरचनात्मक प्रक्रिया को इसके साथ अध्ययन न कर लिया जाये। शब्दों की विपुल मात्रा में विनिर्मित ही शब्द–संपदा

अथवा शब्द–भंडार की अभिवृद्धि करेगी। वस्तु शब्द भण्डार के सम्पूर्ण अर्थबोध के लिए शब्दों की संरचनात्मक प्रक्रिया पर सापेक्षिक दृष्टि से विवेचन किया जाता है।

'शब्द' एक धातु है जिसका अर्थ है शब्द करना अर्थात् बोलना। इस प्रकार जिससे बोलने का अर्थ ज्ञान हो, वही शब्द है। वंशानुक्रम की दृष्टि से पद से छोटी इकाई शब्द है। विशुद्ध रूप से शब्द–व्युत्पत्ति को ही शब्द–रचना कहा जायेगा। इस प्रकार शब्द–रचना की परिधि में यौगिक शब्द ही आते हैं, न कि रूढ़ शब्द। शब्द–रचना से यही प्रतिभाषित होता है कि प्रचलित शब्द भाषा के अन्य प्रचलित शब्द से किस प्रकार बना हुआ है। शब्द संरचना के संबंध में कामता प्रसाद गुरु कहते हैं –

''एक ही भाषा के किसी शब्द से जो दूसरे शब्द बनते हैं वे बहुधा तीन प्रकार से बनाये जाते हैं। किसी–किसी शब्द के पूर्व एक–दो अक्षर लगाने के लिए शब्द बनाये जाते हैं और किसी–किसी शब्द के पश्चात् एक–दो अक्षर लगाकर नये शब्द बनाये जाते हैं और किसी–किसी शब्द के साथ दूसरा शब्द मिलने से नये संयुक्त शब्द तैयार होते हैं।'' साधारणतया इसे उपसर्ग, प्रत्यय समास जैसा नाम दिया जाता है।

उपसर्ग

उपसर्ग उस भाषिक इकाई को कहते हैं जिसका भाषा विशेष में स्वतंत्र प्रयोग न होता हो किन्तु जिसे विभिन्न प्रकार के शब्दों के आरम्भ में जोड़कर शब्द–रचना की जाती हो। जैसे सुनिश्चित। यहाँ 'सु' उपसर्ग है। हिंदी में आए हुए उपसर्गों में तत्सम्, तद्भव तथा इतर भाषीय हैं। इनका विवेचन निम्न है –

तत्सम

हिन्दी में बहुत से संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग होता है। उन शब्दों में संस्कृत के उपसर्ग व्यवहृत होते हैं। इस दृष्टि से संस्कृत स्त्रोत से आय उपसर्गों का विवरण निम्न है –

प्र	–	(अधिक) प्रयत्न, प्रख्यात, प्रबल, प्रक्रिया, प्रगति।
परा	–	(पीछे, उल्टा) परभाव, पराक्रम, पराजय।
अप	–	(दूर या बुरा) अपमान, अपकर्ष, अपरूप, अपकृति।
सम्	–	(साथ, पूर्णता) सम्मान, संपूर्ण, सम्मोहन, संविधान।
अनु	–	(अनुसारता अथवा साथ) अनुगमन, अनुरूप, अनुगत, अनुमान।
अव	–	(विरोध एवं विकृति) अवचेतन, अवशेष, अवगुण, अवरूद्ध।
निस्	–	(बिना, बाहर) निस्तार, निष्कासन, निस्सन्देह।
निर्	–	(बाहर) निर्जन, निरपराध, निर्दोष, निर्गम।
दुस्	–	(कठिन) दुस्सह, दुष्काल।
दुर्	–	(बुरा) दुर्गंध, उदुर्गुण, दुर्गम, दुर्लभ।
अति	–	(अधिक, उल्लंघन) अतिरिक्त, अत्याधिक, अत्यंत।
अधि	–	(विशिष्टता, अधिकता) अधिनियम, अधिभास, अधिभौतिक।
अभि	–	(विशिष्टता, उन्मुखता) अभिमत, अभ्यंतर, अभीष्ट।
अपि	–	(निकट) अपिधान, अपिकर्ण।

उप् – (नैकट्य सहकार्य, लघुता) उपनगर, उपमंत्री, उपनाम, उपजाति।

प्रति – (ओर, उल्टा) प्रतिकार, प्रतिगमन, प्रतिष्ठा।

वि – (अभाव एवं विशिष्टता) विक्रम, विज्ञान, विनाश।

नि – (नीचे) निक्षेप, निपात।

सु – (श्रेष्ठता) सुगंध, सुकर्ण, सुगम।

परि – (परिधि, पूर्णता) परिजन, परिवर्तन, परितोष।

कुछ अव्यय और विशेषण भी उपसर्गों की भांति व्यवहार में लाये जाते हैं –

अन्नत – अन्तर्धान, अन्तर्हित।

अलं – अलंकार।

आवि – आविर्भाव।

तिर – तिरोहित, तिरोधान।

कु – कुसंग।

किं – किंचित।

चिर – चिरायु।

तद् – तदकार।

पुनः – पुनर्विवाह, पुनर्मिलन।

तद्भव

ये उपसर्ग हिंदी के तद्ीाव शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं। वस्तुतः ये उपसर्ग संस्कृत से आकर हिदी के अपने हो गये हैं। इनका विवेचन निम्न है –

अन् – (नहीं) अनभल, अनबन, अनजान।

कु – (विकृति) कुचाल, कुसाज।

उन् – (एक कम या एक नहीं) उजड्ड, उचक्का, उन्नीस, उनतीस।

अध – (आधा) अधपका, अधेसरा।

औ – (हीनता) औघट, औगुन।

क – (हीनता) कपूत।

दु – (बुराई) दुबला, दुकाल।

नि – (अभावधोतक) निहत्था, निडर।

भर – (पूर्णत्वबोधक) भरकस, भरपेट।

सवा – (चौथाई अधिक) सवा पाँ, सवा सात।

इतरभाषीय उपसर्ग

ये उपसर्ग अरबी–फारसी तथा अंग्रेजी से आये हुए हैं। इनमें अरबी–फारसी उपसर्गों की संख्या अधिक है।

अरबी–फारसी

कम – (हीनत्वबोधक) कमजोर, कम उम्र।

ना – (अभाव तथा निषेध) नापसंद, नामंजूर

फी – (प्रत्येक) फी आदमी।

बद – (विकृति) बदनाम, बदचलन।

बे – (अभाव) बेइमान।

ला – (अभाव) लावारिश, लापरवाह।

गैर – (नकारात्मक) गैरवाजिब।

दर – (में) दर किनार, दर असल।

ब – (से) बदस्तूर, बखूबी।

अंग्रेजी

डिप्टी – (उप) डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी कमिश्नर।

वाइस – (उप) वाइस चांसलर।

सब – (उप) सबडिवीजन।

हाफ – (आधा) हॉफ पैण्ट, हाफ शर्ट।

हेड – (प्रधान) हेड मास्टर, हेड क्लर्क।

प्रत्यय

शब्दों के पश्चात् जो अक्षर व अक्षर–समूह लगाया जाता है उसे प्रत्यय कहते हैं। भाषिक व्यवस्था में प्रत्यय का महत्त्व निर्विवाद है प्रत्ययों के सहयोग से हो आशय तथा अर्थ, अनेकानेक शब्दों के रूप में प्रकट हो भाषा को समर्थ बनाते हैं।

प्रत्यय के कई भेद किये जाते हैं। कुछ लोग प्रत्यय को देशी और विदेशी भेदों में बाँटते हैं और कुछ लोग संस्कृत की परिपाटी को मानते हुए प्रत्यय को कृत तथा तद्धित के रूप में विभाजन करते हैं। किन्तु स्वीकृत परिपाटी का समग्रतः अनुपालन हिंदी प्रत्यय परंपरा में कुछ व्यावहारिक नहीं लगता है, क्योंकि ऐसे भी प्रत्यय हैं जो कृत और तद्धित दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–आई। प्रस्तुत प्रत्यय से पढ़ाई (कृत) तथा चतुराई (तद्धि) दोनों ही बनते हैं। क्योंकि पढ़ना धातु है और चतुर शब्द है।

हिंदी भाषाविदों ने प्रयोग के अर्थ को दृष्टि में रखकर प्रत्यय के निम्न भेद किए हैं – (1) संज्ञा विधायक, (2) विशेषण विधायक, (3) क्रिया विधायक, (4) क्रिया विशेषण विधायक, (5) स्त्री प्रत्यय आदि। हिन्दी प्रत्ययों को निम्नतः विवेचित किया जा सकता है –

संज्ञा विधायक प्रत्यय

इन प्रत्ययों में देशी–विदेशी दोनों का समावेश है क्योंकि हिंदी भाषा में उपसर्गों की भाँति अरबी–फारसी के प्रत्यय भी प्रविष्ट हो चुके हैं। संज्ञा विधायक प्रत्यय के कुछ उदाहरण निम्न हैं –

देशी	प्रत्यय	शब्द
	–अ क	पाठक
	–अ त	खपत
	–अ ट	जीवन
	–अ न	चलन, सड़न
	–अन् त	रटन्त, गढ़न्त
	–आ न	थकान
	–आ ई	लड़ाई
	–आ र	लोहार, चमार, कुम्हार
	–आ रा	निपटारा
	–आरी	भिखारी
	–आ स	मिठास
	–आ व	छलाव, छिड़काव, बचाव
	–आ वा	पछतावा
	–आ व न	बिछावन
	–आ व ट	लिखावट
	–आ ह ट	गरमाहट
	–ई	बोली, हँसी
	–ऐ त	लठैत
	–औ ता	समझौता
	–प न	लड़कपन, बाल्पन
	–त ा	सुन्दरता
	–त्व	वीरत्व
	–नी	करनी
	–वा न	हाथीवान
	–वा रा	बंटवारा
	–शा ला	धर्मशाला इत्यादि

विदेशी	प्रत्यय	शब्द
	–इ श	आजमाइश
	–इ य त	इन्सानियत
	–का र	पेशकार
	–खा ना	छापाखाना
	–गी र	राजगीर, रहगीर
	–दा न	पायदान
	–दा नी	मच्छरदानी
	–नी व स	अर्जीनवीस
	–बन्द	बिस्तरबन्द
	–वा र	माहवार

विशेषण विधायक प्रत्यय

विशेषण विधायक प्रत्यय उन्हें कहते हैं जहाँ प्रत्ययों के संयोग से विशेषण शब्दों की निर्मिति हो। यथा –

–अक्कड़	पियक्कड़, घुमक्कड़
–ओड़	हँसोड़
–इयल	सडियल
–आउ	बिकाऊ
–ए क	तीनेक
–इ या	दुखिया
–उ आ	भडुआ
–ऐ ल	रखैल
–औ टा	कजरौटा
–थ ा	चौथा
– ला	पिछला इत्यादि

क्रिया विधायक प्रत्यय

इन प्रत्ययों के योग से क्रिया पदों की रचना होती है। यथा –

–अ	=	तैरा, जगा, घुमा
–वा	=	पड़ता, पिलवा आदि।

इसी प्रकार –आड़ी, ए, ब प्रत्यय के योग से क्रिया विशेषण विधायक प्रत्यय की निर्मित होती है, यथा – अगाड़ी, पीछे, अब, तक इत्यादि।

स्त्री प्रत्यय

प्रयोगार्थ की दृष्टि से किये गये प्रत्यय विभाजन के अंतर्गत स्त्री प्रत्यय को भी समाहित किया जाता है। पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनाने वाले प्रत्ययों को स्त्री प्रत्यय कहते हैं। संस्कृत के टाप (आ) डीप (ई) प्रत्ययों का प्रयोग हिंदी में भी होता है। हिंदी में प्रयुक्त होने वाले स्त्री प्रत्यय अन्, इन्, नी, इया, आइन हैं। कुछ नमूने द्रष्टव्य हैं –

–आ	=	बाला, प्रियतमा
–ई	=	नर्तकी, हिरणी
–अ न	=	दुल्हन
–इ न	=	नाइन, चमारिन
–नी	=	मोरनी, उँटनी
–इ या	=	बिटिया, चुहिया
–आ नी	=	देवरानी, जेठानी
–आइन	=	सुहआइन, ठकुराइन

3.4 समस्त पद

समस्त पद व्याकरिणक योग्यता प्राप्त भाषा की ऐसी इकाई है जो पद से बड़ी और पदबन्ध से छोटी होती है। जब दो या दो से अधिक शब्द मिलकर एक सामाजिक शब्द की रचना करते हैं, तो उसे समस्त पद कहते हैं। समस्त पद के दोनों शब्दों में कुछ संबंध होने आवश्यक हैं। समस्त पद के पूर्वांश को पूर्व पद और बाद के दूसरे अंश या शब्द को उत्तर पद कहते हैं; यथा– राजा का पुत्र > राजपुत्र। 'राहा' और 'पुत्र' दो शब्दों के योग से बना समस्त पद 'राजपुत्र' एक स्वतंत्र शब्द है।

समस्त पद से पदबन्ध में प्रमुख भेद यह है कि वह वाक्य का एक भाग है और उसमें एकाधिक पद का साथ मिलकर एक पद के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जबकि समस्त पद में दो शब्दों से एक स्वतंत्र शब्द–रचना होती है यथा– 'राम वन गए' में 'राम' एक पद है। इसके साथ एकाधिक पद जोड़ कर पदबन्ध बना सकते हैं– 'दशरथ के पुत्र राम' या 'महाप्रतापी राजा दशरथ के पुत्र राम'।

हिंदी की समस्त पद प्रक्रिया संस्कृत भाषा से आई है। संस्कृत भाषा सामाजिक शैली के लिए प्रसिद्ध है। इसे भाषा की संश्लिष्ट प्रवृत्ति कहते हैं। वैसे हिंदी वियोगात्मक या विसंश्लिष्ट भाषा है, किन्तु प्रयत्नलाघव संबंधी व्यावहारिक दृष्टि से समस्त पद का पर्याय रूप में प्रयोग होता है। सभी भाषाओं में समस्त पद की रचना हो सकती है, किंतु प्रत्येक भाषा के समस्त पदों की संरचना भिन्न होगी। समस्त पद के खण्डों के आपसी संबंध को स्पष्ट करने के लिए उनको पृथक् करते हैं। इस प्रक्रिया को 'विग्रह' कहते हैं; यथा–

समस्त पद	विग्रह
घुड़दौड़	घोड़ों की दौड़
फुलवारी	फूलों की बाड़ी

वर्गीकरण

समस्त पद के अर्थ अभिव्यक्ति में उनके दोनों अंशों–पूर्व पद तथा उत्तरपद की विशेष भूमिका होती है। समस्त पद में भी कभी पूर्वपद प्रधान होता है, कभी उत्तरपद। कभी दोनों पद समान रूप से प्रधान होते हैं, तो कभी दोनों से भिन्न कोई अन्य पद प्रधान होता है। इस आधार पर समस्त पद रचना–प्रक्रिया को मुख्यतः चार भागों में विभक्त करते हैं –

1. अव्ययीभाव– जब समस्त पद का पूर्वपद अव्यय हो तो इस पद की प्रधानता होती है। ऐसे में पूर्ण समस्त पद अव्यय के रूप में प्रयुक्त होता है; यथा –

   प्रतिदिन (दिन–दिन) यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)

   आजन्म (जन्म से लेकर)

   अव्ययीभाव समस्त पद का प्रयोग क्रिया–विशेषण के रूप में होता है।

   वह विद्यालय प्रतिदिन जाएगा।

   आपका कार्य यथाशक्ति करूंगा।

2. तत्पुरूष – जिस समस्त पद में अर्थ की दृष्टि से प्रथम पद गौण और उत्तरपद प्रधान हो उसे तत्पुरूष समस्त पद कहते हैं। ऐसे समस्त पद की संरचना में दोनों शब्दों के मध्य से परसंर्गों का लोप हो जाता है। तत्पुरूष समस्त पद संरचना के चार भेद हैं –

(क) लुप्त पद तत्पुरुष – जब दो शब्दों के मध्य के शब्द लुप्त हो जाते हैं, यथा –

पनचक्की – पानी से चलने वाली चक्की

रेलगाड़ी – रेल पर चलने वाली गाड़ी

(ख) नञ् तत्पुरुष– जब अभाव या निषेध अर्थ प्रकट करने के लिए पूर्व रूप में 'अ' या 'अन' का प्रयोग करते हैं; यथा –

अस्थिर – अ स्थिर

अनश्वर – अ नश्वर

अनावश्यक – अन आवश्यक

(ग) कर्मधारय – इस समस्त पद का उत्तर पद प्रधान होता है। पूर्व पद विशेषण तथा उत्तरपद विशेष्य है; यथा–

लाल टोपी – लाल है जो टोपी

नीलकमल – नीला है जो कमल

(घ) द्विगु – इस समस्त पद का पूर्व पद संख्यावाचक होता है। विशेषण–विशेष भाव के साथ समस्त पद समूहवाची भी होता है।

नौरत्न – नौ रत्नों का समाहर (समूह)

चौराहा – चार राहों का समूह

अठन्नी – आठ आनों का समूह

3. द्वन्द्व –जब दो समान यपी प्रधान पदों के योग से समस्त पद की रचना हो, तो द्वन्द्व समस्त पद होगा। पूर्व तथा उत्तर पदों के मध्य से समुच्चय बोधक अव्यय का लोप कर दिया जाता है; यथा –

माता–पिता – माता और पिता

नर–नारी – नर और नारी

4. बहुबीहि – जिस समस्त पद की रचना में पूर्व और उत्तर दोनों पद गौण हों, साथ ही कोई अन्य पद प्रधान हो, तो बहुब्रीहि समस्त पद संरचना होगी; यथा–

नीलकंठ – नीला है कंठ जिसका (शिव)

दशानन – दस हैं आनन जिसके (रावण)

हिंदी भाषा में समस्त पद की रचना मुख्यतः प्रयत्नलाघव की देन है। समस्त पद के पूर्व तथा उत्तर पद प्रायः एक भाषा–स्रोत के शब्दों पर आधारित होते हैं, किन्तु यदा–कदा भिन्न स्त्रोत से भी ऐसी रचना हो जाती है; यथा– रेलगाड़ी, डाकघर।

हिंदी में समस्त पद के दोनों (पूर्व और उत्तर) पदों का एक शिरोरेख से लिखते हैं। दोनों पदों की प्रधानता पर बीच में योजब (–) चिह्न का प्रयोग करते हैं।

3.5 हिन्दी की व्याकरणिक कोटियाँ

भाषा की सहज तथा लघुतम इकाई वाक्य है। वाक्य में व्याकरणिक योग्यता प्राप्त एक या एक से अधिक पद होते हैं। लेखन तथा उच्चारण मं शुद्धता–यथार्थता लाने के लिए पदों को व्याकरण के कई अनुशासनों पर चलना पड़ता है। व्याकरण के इस अनुशासनात्मक आधार को व्याकरणिक कोटियाँ कहते हैं। ये व्याकरणि कोटियाँ भाषानुसार अपने–अपने ढंग की होती हैं। प्रत्येक वाक्य में पद–विभाग की कई कोटियाँ सम्मिलित होती हैं। इनके पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करने के लिए ही व्याकरणिक कोटियों का अध्ययन करते हैं। इससे भावाभिव्यक्ति की स्पष्टता, सशक्ता के साथ निश्चयात्मक रूप सामने आता है। 'व्याकरणिक कोटियाँ' के कुछ उल्लेखनीय तथ्य इस प्रकार हैं–

1. प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक कोटियों में भिन्नता होती है।
2. सभी भाषाओं की व्याकरणिक कोटियाँ काल सापेक्ष होती हैं।
3. भाषा की रचना प्रक्रिया के अनुसार व्याकरणिक कोटियों का निर्धारण किया जाता है; यथा–अंग्रेजी में चार लिंगों, संस्कृत में तीन लिंगों और हिंदी में दो लिंगों की प्रक्रिया के अनुसार उनकी लिंग संबंधी व्याकरणिक कोटि निर्धारित की गई है। व्याकरणिक कोटियों के आधार पर भाषा का विश्लेषण किया जाता है।

हिंदी की व्याकरणिक कोटियों में लिंग, वचन, पुरूष, काल, वृत्ति, पक्ष और वाक्य आदि प्रमुख हैं–

1. **लिंग (Gender)** : लिंग का शाब्दिक अर्थ है– चिह्न अर्थात् वह माध्यम जिससे किसी की पहचान की जा सके। लिंग के दो भेद हैं– 1. प्राकृतिक, 2. व्याकरणिक।

प्राकृतिक लिंग निर्धारण में कोमलता, लज्जाशीलता और शान्तिप्रियता को देखकर सम्बन्धित प्राणी को स्त्रीलिंग कहा गया है। इसके विपरीत कठोर, पौरूषेय तथा शक्तिशाली गुणों से सम्पन्न देखकर उसे पुल्लिंग वर्ग में व्यवस्थित किया गया है।

सभी भाषाओं में लिंग–निर्धारण प्रक्रिया और उनकी संख्या अलग–अलग हो सकती है। एक ही व्यक्ति या

वस्तु के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों के लिंगों में भिन्नता हो सकती है; यथा–संस्कृत में दार (पत्नी) पुल्लिंग बहुवचन है। इसके पर्याय स्त्री, नारी, भार्या आदि शब्द स्त्रीलिंग हैं तो कलत्र नपुंसक लिंग है। इस तरह स्पष्ट है कि व्याकरणिक तथा प्राकृतिक लिंग में पर्याप्त भिन्नता है। अंग्रेजी में (Masculine, Feminine, Neuter, Coomon) चार लिंग (Gender) हैं। संस्कृत में पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक, तीन लिंग हैं, तो हिंदी में मात्र पुल्लिंग की व्यवस्था है।

हिंदी में लिंग की अभिव्यक्ति मुख्यतः क्रिया से होती है। किसी शब्द के लिंग की ज्ञान–प्राप्ति, उसको वाक्य में प्रयोग कर सम्बन्धित क्रिया के रूप से करते हैं। कभी–कभी लिंग निराकरण कारकों चिह्नों से भी होता है; यथा– 'उनका कुत्ता था', 'मेरी लाठी थी'। इन दो वाक्यों में 'उनका' के 'का' और 'मेरी' के 'री' से कुत्ता और लाठी के क्रमश' पुल्लिंग, स्त्रीलिंग होने का ज्ञान है। हिंदी में लिंग भाव दो प्रकार से व्यक्त करते हैं –

(क) प्रत्यय लगाकर

हिंदी के पुल्लिंग शब्दों में प्रत्यय लगा देने से वे स्त्रीलिंग बन जाते हैं; यथा –

आ = बाल > बाला, बालक > बालिका	ई = नर > नारी, लड़का > लड़की
इन = धोबी > धोबइन, नाई > नाइन	इया = कुत्ता > कुतिया
आनी = नौकरानी	नी = शेर > शेरनी

(ख) स्वतन्त्र शब्द लगाकर

हिंदी में ऐसे प्रयोग सीमित ही मिलते हैं। संस्कृत में 'व हके लिए स्त्रीलिंग सा, तो पुल्लिंग सः का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी में 'वह' के लिए He और स्त्रीलिंग के लिए She का प्रयोग करते हैं

2. वचन (Number) : वचन के द्वारा संख्या की सूचना मिलती है। हिंदी के एक वचन में एक व्यक्ति या वस्तु के अर्थबोधक शब्द होते हैं, तो बहुवचन में दो या दो से अधिक व्यक्ति या वस्तु के अर्थ बोधक शब्द होते हैं। हिंदी में एकवचन और बहुवचन दो वचनों की व्यवस्था है। संस्कृत में एकवचन, द्विवचन, बहुवचन तीन वचन हैं। इनके संज्ञा, सर्वनाम और क्रिया आदि शब्द तथा धातु रूपों में वचनों का निधारण प्रत्यय लगाकर करते हैं; यथा –

पठ् (पढ़ना)– पठति (पढ़ता है), पठतः (दो पढ़ते हैं), पठन्ति (वे पढ़ते हैं)।

हिंदी शब्दों के एकवचन से बहुवचन परिवर्तन में कई प्रत्ययों का सहारा लिया जाता है; यथा–

ए = लड़का > लड़के	घोड़ा > घोड़े	एँ = गाय > गायें	
इयाँ = चिड़िया > चिड़ियाँ	स्त्री > स्त्रियाँ	ओं = घोड़ा > घोड़ों, बैल > बैलों	

समूहवाचक शब्द प्रायः एकवचन में ही प्रयुक्त होकर भी एकवचन में प्रयुक्त होते हैं; यथा– गाय पालतू जानवर है। कुत्ता स्वामिभक्त जानवर है।

हिंदी में ऐसे कई शब्द हैं, जिनके एक ही रूप का प्रयोग एकवचन और बहुवचन दोनों में ही होता है। ऐसे मुख्य शब्द हैं –छात्र, कवि, मुनि, साधु आदि। वचन–परिवर्तन में संज्ञा, और क्रिया ही नहीं, विशेष शब्द भी प्रभावित होते हैं; यथा अच्छा > अच्छे, गन्दा > गन्दे आदि।

3. पुरुष : भारत में पुरुष की कल्पना दो या दो से अधिक व्यक्तियों के आमने–सामने होने और वार्तालाप करने से हुई है। ऐसे समय वक्ता, श्रोता और अन्य व्यक्ति या वस्तु का अस्तित्व होता है। इसी संदर्भ में अन्य पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष का सैद्धांतिक रूप में निर्धारण किया गया है, अर्थात् वक्ता–उत्तम पुरुष, श्रोता–मध्यम पुरूष

दोनों से भिन्न अन्य पुरूष। संस्कृत में प्रथम ईश्वर को माना गया है। इसलिए प्रथम पुरुष सबसे पहले और उत्तम पुरुष अन्त में रखा गया है।

प्रायः सभी भाषाओं में तीन पुरुषों की व्यवस्था है; यथा –

हिंदी	संस्कृत	अंग्रेजी
अन्य पुरुष वह, वे	सः, तौ, ते, सा, ते, ताः	He, She, They
मध्यम पुरुष तुम, आप, सब	त्वं, युवाम, युयम्	You
उत्तम पुरुष मैं, हम	अहं, आवाम्, वयम्	I, We

4. कारक (Case) : क्रिया के निष्पादक को कारक कहते हैं। क्रिया की निष्पत्ति के साधनों में भेद होने के कारण कारकों में भेद होता है। प्रत्येक भाषा के, कारकों की अपधारणा और उनकी संख्या भिन्न–भिन्न होती है। संस्कृत में कर्त्ता, कर्म, कारक, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, सम्बोधन, सात कारक पाए गए हैं। कुछ विद्वान सम्बन्ध को कारक की कोटि में नहीं रखते, क्योंकि क्रिया की निष्पत्ति में इसका सीधा योग नहीं होता है, यथा–दशरथ के पुत्र राम बन गए। यहाँ दशरथ का सम्बन्ध राम से है न कि गए (क्रिया) से। सम्बोधन का रूप प्रथमा पर आधारित होता है। इस प्रकार सम्बोधन की पूर्ण स्वतंत्र सत्ता नहीं है। कुछ आचार्यों तथा विद्वानों ने सम्प्रदान और अपादान को भी कारक श्रेणी में स्वीकार नहीं किया है। उनका कहना है कि इनका भी क्रिया से सीधा योग नहीं होता है। इसी प्रकार कर्त्ता, कर्म, कारण और अधिकरण चार कारक हुए। कारकों में लगने वाले चिह्नों को विभक्ति कहते हैं। विभक्ति नामकरण का आधार है कि इससे कारक एक–दूसरे से विभक्त हो जाते हैं।

5. काल (Tense) : समय की स्थिति को काल कहते हैं। सभी भाषाओं में काल के मुख्यतः तीन भेद हैं– भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल। इससे कार्य निष्पत्ति के समय का बोध होता है। भाषा–विकास के अनुसार काल की धारणा में परिवर्तन होता रहता है। सामान्यतः भाषा में बीते हुए काल को 'भूतकाल'; जो काल चल रहा हो, उसे वर्तमान काल; जो काल अभी आया न हो, उसे भविष्यत् काल कहते हैं। विभिन्न कालों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

भूतकाल	–	वह जा रहा था।	मैं वहाँ गया था।
वर्तमानकाल	–	वह जा रहा है।	मैं वहाँ जा रहा हूँ।
भविष्यत् काल	–	वह जा रहा होगा।	मैं वहाँ जाऊँगा।

कभी–कभी काल–सिद्धान्तों के विपरीत प्रयोग मिल जाते हैं; यथा–माली प्रतिदिन पौधों को सींचता है। इस वाक्य में भूतकाल में माली के पौधों के सींचने, वर्तमान में पौधों को सींचने के साथ भविष्य में भी सींचते रहने का भाव स्पष्ट होता है। उक्त वाक्य को देखने से वर्तमान काल से सम्बन्धित वाक्य लगता है, किन्तु है काल–निरपेक्ष। यदा–कदा भविष्यत् काल के लिए भूतकाल के पदों का निर्माण करते हैं, यथा– आप रूकें, मैं आया। यहाँ 'आया' शब्द आना का भूतकालिक रूप है, किन्तु भविष्यत् काल के रूप में प्रयुक्त है। भविष्यत् काल के वर्तमान काल के रूप भी प्रयुक्त होते हैं; यथा मैं आपके घर शाम को पहुँच रहा हूँ। यहाँ पहुँच रहा हूँ वर्तमान काल का रूप है, किंतु भविष्यत् काल के लिए प्रयुक्त है।

6. वृत्ति : हिंदी में वृत्ति के लिए क्रियार्थ, क्रियाभाव और क्रिया प्रकार आदि शब्दों के प्रयोग होते हैं। अंग्रेजी में इसे Mood कहते हैं। डॉ0 रमानाथ सहाय के अनुसार वृत्ति को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं, ''मूड'' की अभिवाजना मुख्यतया विशिष्ट लकारों द्वारा अथवा और वृत्तिघोतक सहायक क्रियाओं द्वारा होती है गौणतया विशिष्ट निपातों का भी प्रयोग होता है और पदक्रम और अनुतान विशेष भी सीमित मात्रा से इसे घोषित करता है।''

स्वरूप : इसके द्वारा मनुष्य के मानसिक भाव साथ कर्त्ता और कर्म के सम्बन्ध का ज्ञान होता है। पाणिनि के अनुसार, लिङ् लकार वृत्ति का मुख्य आधार है। इसके द्वारा वक्ता के मानसिक व्यापक और भाषिक तत्वों का ज्ञान होता है। वृत्ति और वक्ता के सम्बन्ध को रेखांकि करते हुए डॉ0 सूरजभान सिंह ने कहा है, ''कार्य–व्यापार के प्रति वक्ता की वृत्ति वस्तुतः एक व्यापक व्याकरणिक लक्षण है जिसे अगर व्याकरणिक वृत्ति की परंपरागत परिभाषा से अधिक विस्तृत आयाम दें तो इसमें वे सभी भाषिक तत्त्व या लक्षण शामिल हो सकते हैं, जो किसी भी प्रकार वाक्य में वक्ता के विशिष्ट दृष्टिकोण या अभिव्यक्ति को प्रकाशित करते हैं''

वर्गीकरण : वृत्ति को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

(क) वृत्ति प्रत्यय

इसमें मुख्यतः आज्ञार्थक, संभावनार्थक, संकेतार्थक और भविष्यत् संबंधी प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।

1. आज्ञार्थक को दो उपवर्गों में बाँट सकते हैं –

   प्रत्यय आदेश – मेरे लिए कलम लाओ।

   अप्रत्यक्ष आदेश – मुझे एक कलम चाहिए।

ऐसे में 'ऐगा' प्रत्यय लगा देने से निवेदन भाव आता है– चाय दीजिएगा, साथ चलिएगा आदि।

2. सम्भावनार्थक वृत्ति के साथ क्रिया में 'ए' प्रत्यय लगाते हैं इससे इच्छा, कामना, अनुरोध का भाव प्रकट होता है –

   शायद वह चला जाए। ईश्वर तुम्हें खुश रखे।

3. संभाव्य निश्ति तथा अनिश्चित संभावनाओं में क्रमशः तो होगा, रहा होगा ओर 'ता हो', 'रहा हो' के प्रयोग होते हैं; यथा –

   वह लिखता होगा। वह जग रहा होगा।

   शायद वह पढ़ता हो। शायद वह जाग रहा हो।

4. संकेतार्थक हिंदी में संकेत वृत्ति की सूचना शर्त और इच्छा के सन्दर्भ में 'ता' प्रत्यय से होती है– अगर अंकुर कहता तो यह जरूर आता। (शर्त)

   काश, मैं भी लौट आता। (इच्छा)

5. भविष्यत् : भविष्यत् वृत्ति क्रिया में 'एगा', एगी, एँगे, 'ऊँगा' आदि प्रत्यय लगाने से बनती है –

   वह घर जाएगा।मैं घर जाऊँगा।

(ख) सहायक वृत्तिक क्रियाएँ

हिंदी में मुख्य क्रिया के साथ सहायक क्रिया लगाने से वृत्ति का बोध होता है।

सकना – कार्य व्यापार की पूर्णता का ज्ञान होता है– मैं नदी पार कर सकता हूँ।

पाना – सामर्थ्य का बोध होता है –वह पत्र लिख पाया। तुम गा पाए।

ते बना – सामर्थ्य बोध होता है– यहाँ नकारात्मक रूप होते हैं– उससे कहते न बना।

ना है – बाध्यतासूचक वृत्ति क्रिया है– मुझे अभी लिखना है।

ना चाहिए – इससे परामर्श का बोध होता है– मुझे घर चलना चाहिए। तुम्हें अवश्य लिखना चाहिए।

3.6 हिंदी वाक्य संरचना : मूलाधार

भारतीय आचार्यों में योग्यता का अर्थ है– वाक्य के विभिन्न पदों में पारस्परिक योग्यता अर्थात् अर्थ की दृष्टि से एक पद का दूसरे पद के साथ संबंध भाव में बाधा न होना योग्यता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वाक्य के विभिन्न पदो ंके अन्वय में कोई बाधा न होना योग्यता है। वाक्य के पदो ंके अन्वय में दो प्रकार की बाधाएँ होती हैं।

(क) अर्थमूलक अयोग्यता : जब कोइ वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य हो, किन्तु अर्थ–प्रतीति की दृष्टि से अनुपयुक्त हो, तो वह वाक्य नहीं होगा; यथा– वह आग से पौधों को सीच रहा है। वह पानी खा रहा है। दोनों ही वाक्य व्याकरण की दृष्टि स योग्य हैं; किन्तु अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हैं, क्योंकि आग से सिंचने का कार्य नहीं होता है और न ही पानी खाया जाता है। सिंचने का कार्य पानी से होता है और पानी पीया जाता है। इस प्रकार दोनों पद समूह तभी वाक्य की योग्यता प्राप्त कर पाएंगे जब इन रूपों में होंगे– वह पानी से पौधों को सींच रहा है। वह पानी पी रहा है। ऐसे वाक्यों को ही समाज की स्वीकृति प्राप्त होती है।

(ख) व्याकरणमूलक अयोग्यता : ऐसे वाक्य जिन्हें समाज में यत्र–तत्र मान्यता मिल जाने से अर्थ अभिव्यक्ति संभव होती है, किंतु व्याकरणिक दृष्टि से उनकी संरचना अशुद्ध होती है, तो मानक भाषा में उसे वाक्य नहीं माना जाएगा। यह व्याकरणिक अयोग्यता लिंग, वचन, विभक्ति आदि किसी भी रूप में हो सकती है; यथा –

रमेश घर जाती है – लिंग अयोग्यता

तुमने बोले – विभक्ति अयोग्यता

हम जाता हूँ – वचन।

2. आकांक्षा

आकांक्षा का शाब्दिक अर्थ है– इच्छा, अपेक्षा या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में शब्द या पद एक दूसरे से संबंधित होते हैं। यह सम्बन्धन भाव वाक्य के आकांक्षा तत्त्व के ही कारण संभव होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की अर्थ अभिव्यक्ति संदर्भ में एक–दूसरे की अपेक्षा रहती है। मानक हिंदी में प्रायः कर्ता, कर्म और क्रिया का क्रमिक प्रयोग होता है, किन्तु वाक्य में इनको एक दूसरे की अपेक्षा होती है। कर्त्ता कर्म को क्रिया की अपेक्षा होती है, तो कर्म को कर्त्ता और क्रिया की। क्रिया को कर्ता और कर्म की अपेक्षा होती है। इस अपेक्षा की पूर्ति पर ही वाक्य की संरचना और अर्थ की अभिव्यक्ति सम्भव है। इस प्रकार आकांक्षा की अपूर्णता पर वाक्य अपूर्ण होता है; यथा–''रजनी'' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। इससे मन में जानने की इच्छा होती है कि वह क्या करती है ''गाती है'' कहने से कर्त्ता सम्बन्ध में जिज्ञासा होती है कि कौन गाती है? क्या गाती है? इसी प्रकार 'गीत'' कहने से कर्त्ता और क्रिया के विषय में जिज्ञासा होती है। उक्त तीनों पद– ''रजनी'', ''गीत'' और ''गाती है'' एक साथ साकांक्ष प्रयुक्त होने से– ''रजनी गीत गाती है'', पूर्ण वाक्य की संरचना होती है। वाक्य की आकांक्षा शक्ति के द्वारा श्रोता की जिज्ञासा की पूर्ति होती हैं ''तुम मेरे लिए...'' से पूर्ण भाव प्रकट नहीं होता है। इसमें इच्छा शेष रह जाती है। इसलिए इसे वाक्य नहीं मान सकते हैं। आकांक्षा पूर्ति हेतु ''फूल लाओगे'' पदों या वाक्यांश को जोड़ देने पर वाक्य संरचना पूरी हो जाती है।

वाक्य की आकांक्षा के संदर्भ में कभी–कभी विशेष संरचना सामने आती है। वक्ता या लेखक वाक्य का कुछ अंश श्रोता या पाठक के परिचित संदर्भ में चमत्कारिक रूप देने के लिए छोड़ देता है। श्रोता या पाठक उसे भाव–वेग से पूरा करता हुआ आकांक्षा की पूर्ति करता है; यथा– कई बार मित्र को पत्र लिखने पर जब उत्तर नहीं आता, तो उत्तर पाने के लिए विशेष आकांक्षा आधारित वाक्यों का प्रयोग करता है– ''कई पत्र लिखे, तुमने उत्तर नहीं दिया। अब की बार उत्तर न दिया तो मैं.....। सच है, तो मैं.....'' यहाँ लेखक और पाठक संबंध–संदर्भ की गंभीरता से वाक्य की पूर्ति होगी।

3. आसक्ति

इसे सन्निधि की भी संज्ञा दी जाती है। इसका शाब्दिक अर्थ है– समीपता। यहाँ वाक्य में आसक्ति का अर्थ है– वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों का विशेष अन्तराल के साथ क्रमिक रूप में प्रयोग। वाक्य में विभिन्न पदों की दूरी सिमट जाए या अधिक हो जाय, तो वाक्य का अस्तित्व संदिग्ध हो जाएगा; यथा– ''यतनकलघरचलना'' की सार्थकता तब तक अस्पष्ट है जब ''यतन कल घर चलना'' रूप में नहीं लिखा जाता है। इसी प्रकार यदि इस वाक्य का ''यतन'' सवेरे बोले, ''कल'' दोपहर में बोले ''घर'' शाम को और ''चलना'' रात में बोले तो यह वाक्य नहीं हो सकता है। वाक्य के विभिन्न पदों का एक विशेष अन्तराल के बाद प्रयोग अनिवार्य है। आधुनिक भाषा वैज्ञानिक चिन्तन–प्रक्रिया में वाक्य के कुछ अन्य अनिवार्य तत्व बताए गए हैं– सार्थकता अन्विति और पदक्रम।

1. सार्थकता : भाषा की मूल इकाई वाक्य का उद्देश्य है– पूर्ण और सार्थक अभिव्यक्ति। वाक्य की सार्थकता का अर्थ है– वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्दों और पदों का सार्थक रूप में प्रयोग; यथा– ''गाय को गो–माता कहते हैं'' में सार्थकता है। यदि इस वाक्य के शब्दों को इस प्रकार ''यगा को गो तामा तेहक हैं'' प्रयोग करें, तो सार्थकता समाप्त हो जाती है और यह वाक्य नहीं रह जाता है। यहाँ पर ध्यातव्य है कि योग्यता के अन्तर्गत पदों और शब्दों की सार्थकता का भाव निहित होता है। वाक्य के ऐसे रूप को समाज द्वारा योग्यता संदर्भ से भी स्वीकृति नहीं मिल सकती है। अतः सार्थकता को वाक्य का भिन्न रूप में अनिवार्य तत्व कहना तर्कसंगत नहीं है।

2. **अन्विति** : इसके लिए अन्वय शब्द का भी प्रयोग होता है। अन्विति का अर्थ है – व्याकरणिक रूप में एकरूपता। इसके अनुसार वाक्य के विभिन्न पदों में वचन, लिंग, पुरूष आदि संदर्भों में समानता होनी चाहिए। डॉ0 भोलानाथ तिवारी के अनुसार वाक्य में दो या दो से अधिक शब्दों की आपसी व्याकरणिक एकरूपता को अन्वय कहते हैं।

   योग्यता–संदर्भ से व्याकरणमूलक योग्यता पर विचार किया जाता है। वाक्य की व्याकरणिक योग्यता (विभिन्न पदों में वचन, लिंग विभक्ति आदि की समानता) ही अन्विति है। इस प्रकार अन्विति को वाक्य का अलग अनिवार्य तत्व कहना उचित न होगा। अन्वय का विचार कर्ता–क्रिया, कर्म–क्रिया, विशेष, सर्वनाम–संज्ञा संबंधों में कर सकते हैं।

   1. कर्त्ता और कर्म से निपेक्ष क्रियाः जब कर्त्ता और कर्म दोनों के साथ कारक चिह्न हों तो सदा पुल्लिंग एकवचन में होती है; यथा– लड़की ने लड़के को देखा, लड़के ने लड़की को देखा।

   2. सर्वनाम और संज्ञा अन्वय : सर्वनाम सदा उसी संज्ञा के लिंग, वचन का अनुसरण करता है, जिसके स्थान पर प्रयुक्त हो; यथा– वह (नीलम) घर जाती है। वह (विनोद) दिल्ली से आ रहा है।

      आदर सूचक वाक्य में सर्वनाम और क्रिया शब्द बहुवचन हो जाते हैं; यथा– गुरू जी आ रहे हैं। वे

संस्कृत पढ़ाएँगे।

कर्त्ता–क्रिया अन्वय – यदि कर्त्ता के साथ कारक चिह्न न प्रयुक्त हो, तो क्रिया कर्त्ता के अनुसार होगी, यथा – लड़की आम खाती है, लड़का इमली खाता है।

कर्त्ता आदर सूचक हो, तो क्रिया बहुवचन होगी; यथा – महात्मा गाँधी अहिंसा के पुजारी थे, पिताजी आ रहे हैं। कर्त्ता के साथ में, को, से आदि लगाने पर क्रिया का अन्वय नहीं होगा, यथा– महेश ने रोटी खा ली, बालिका को जाना है।

वाक्य में एक ही लिंग, वचन, पुरूष के कारक रहित कर्त्ता और, तथा के युक्त हों, तो क्रिया उसी लिंग में, बहुवचन होगी; यथा – सोहन और सागर जा रहे हैं; लता, मीना और माधुरी जा रही हैं।

3. पद क्रम : पदक्रम के लिए 'क्रम' शब्द का भी प्रयोग होता है। इसका अर्थ है – वाक्य के विभिन्न पदों को भाषा–विशेष के सिद्धान्तानुसार क्रम में रखना।

   संस्कृत भाषा में सामान्यतः पदक्रम का विशेष महत्त्व नहीं होता है; यथा– ''ग्राम निकषा नदी नास्ति'' को भिन्न पदक्रम में इस प्रकार भी लिख सकते हैं।

   निकषा ग्राम नदी अस्ति।

   नदी नास्ति ग्रामं निकषा।

   नास्ति नदी ग्रामं निकषा। आदि–आदि।

संस्कृत भाषा में पदक्रम की ऐसी व्यवस्था का आधार है– सम्बन्ध तत्त्व के साथ सामाजिक रूप में प्रयोग सभी भाषाओं के वाक्यों में पदों का विशेष क्रम होता है। इस पदक्रम की व्यवस्था से पूर्ण और स्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होती है।

हिंदी भाषा में सामान्यतः कर्त्ता, कर्म और क्रिया का क्रमशः प्रयोग होता है; यथा–

''अंशुल आम खाता है'' में अंशुल–कर्त्ता, आम–कर्म और खाता है–क्रिया है। अंग्रेजी में हिंदी के विपरीत कर्ता, क्रिया और कर्म का क्रमिक प्रयोग होता है; यथा –He eats mango. कर्त्ता+क्रिया+कर्म।

वाक्य का यह क्रम विशेष संदर्भ (बलाघात) में बदल दिया जाता है। वाक्य के जिस भाग पर बल देना होता है, उसे सर्वप्रथम प्रयोग करते हैं; यथा

विपिन तुम्हारे साथ घर जा रहा है।	–	सामान्य वाक्य
तुम्हारे साथ विपिन घर जा रहा है।	–	तुम्हारे साथ पर बल
जा रहा है, तुम्हारे साथ विपिन घर।	–	जा रहा है पर बल

इस प्रकार के विशेष पद क्रम वाले वाक्यों से विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। पदक्रम संदर्भ में ध्यातव्य तथ्य निम्नलिखित हैं –

1. विशेषण का प्रयोग प्रायः विशेष से पूर्व होता है; यथा–अच्छा लड़का है। सुन्दर चित्र लाओ। यदाक–कदा विपरीत प्रयोग भी मिल सकते हैं; यथा– वह है सुन्दर।
2. क्रिया विशेषण का प्रयोग प्रायः कर्ता और क्रिया के मध्य होता है; यथा– वह धीरे चलता है, तुम तेज दौड़ते हो।

3. सम्बोधन प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आता है; यथा–दोस्त! आ जाओ, भगवान! तुम कहाँ हो? यदा–कदा इसके विपरीत प्रयोग भी मिल सकते हैं; यथा– बैठो मित्र!
4. अधिकरण कारक प्रायः क्रिया के पूर्व वाक्य के मध्य में प्रयुक्त होता है; यथा–कलम मेज पर है। कलम संदूक में है।
5. निवेदनात्मक 'न' का प्रयोग वाक्य के अन्त में होता है; यथा– आप आइएगा न!
6. निषेधात्मक अव्यय प्रायः क्रिया के पूर्व आते हैं; मैं नहीं आऊँगा। तुम वहाँ न जाना।
7. ही, भी, तो, तक, भर आदि जिस पर बल देना हो उसके बाद आते हैं; यथा– मैं ही आऊँगा, तुम भी चलना, आप तो आएंगे, शाम तक आ जाना आदि।
8. ''मात्र'' और ''केवल'' शब्दों का प्रयोग वाक्य में पहले और बाद में भी होता है; यथा–

   मात्र दो रुपये, दो रुपये मात्र।

   केवल चार पैसे, चार पैसे केवल।
9. विस्मयादिबोधक प्रायः वाक्य के प्रारम्भ में आते हैं; यथा–वाह। कितना सुन्दर दृश्य है।
10. प्रश्नवाचक शब्द प्रायः उस शब्द के पूर्व आता है, जिससे वह सम्बद्ध हो; यथा– क्या तुम पढ़ रहे हो? तुम क्या पढ़ रहे हो? तुम पढ़ क्या रहे हो? तुम पढ़ रहे हो क्या?

पदक्रम के विषय में यह भी ध्यातव्य है कि पद्यात्मक रचना की अपेक्षा गद्य में पदक्रम अधिक व्यवस्थित होता है। लिखित भाषा से उच्चारित भाषा में पदक्रम अधिक प्रभावशाली और स्पष्ट होता है। पदक्रम की इस स्पष्टता के कारण ही उच्चारित भाग में अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत होती है।

हिंदी के विविध रूप

भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में विश्व की सभी भाषाएँ सामान्यतः समान होती हैं, क्योंकि सभी भाषाएँ विचार–विनिमय के मुख्य साधन–रूप में होती है। मन के भावों और अभिव्यक्ति की भिन्नता के कारण भाषा में भिन्नता होती है। भाषा प्रयोग अर्थात् उच्चारण के साथ ग्रहण अर्थात् श्रवण और अर्थ–ग्रहण में भी भिन्नता होना स्वाभाविक है। प्रत्येक मनुष्य की शारीरिक रचना तथा परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होना स्वाभाविक है। प्रत्येक–मनुष्य की शारीरिक रचना तथा परिस्थितियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं जिसके कारण भाषा–प्रयोग तथा ग्रहण में भिन्नता आ जाती है। हिन्दी भारतवर्ष में बहुसंख्यक लोगों द्वारा प्रयुक्त भाषा है। इसका प्रयोग व्यक्ति से राष्ट्रीय स्तर तक होता है। इसका प्रयोग सामाजिक, धार्मिक, प्रशासनिक और राजनीतिक आदि क्षेत्रों में होता है। हिन्दी के प्रयोग की विविधता ही इसकी शक्ति है। हिंदी को प्रयोग के आधार पर मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में विभक्त कर सकते हैं –

बोली (Dialect) :

इसके लिए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर विभाषा, उपभाषा, भाषिका और उपप्रादेशिक नाम भी दिए हैं। बोली के प्रयोग कर्त्ताओं की संख्या उपबोली के प्रयोगकत्ताओं की संख्या कहीं अधिक होती है, क्योंकि कई उपबोलियों का संयुक्त रूप ही बोली होता है। इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक बोली के अन्तर्गत कई उपबोलियाँ आती हैं। एक बोली के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों के लोग आपस की भाषा को सरलता से समझ लेते हैं। क्योंकि एक बोली की विभिन्न क्षेत्रों की उपबोलियों की ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य तथा

अर्थ–संरचना में पर्याप्त समानता होती है। बोली के विभिन्न क्षेत्रों की भाषाओं के उच्चारण तथा लोकोक्ति–मुहावरों के प्रयोग में भी पर्याप्त समानता होती है।

बोलियों के उद्‌भव और विकास का मुख्य आधार है –एक भाषा–भाषियों का दो या दो से अधिक स्थानों पर दूर–दूर बस जाना। उन विभिन्न स्थानों की भाषा में जब उनकी परिस्थितियों के अनुसार धीरे–धीरे पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है, तो बोलियों का विकास होता है। इस प्रकार बोली विकास में एक स्थान के लोगों का दूसरे स्थान के लोगों से शिथिल सम्पर्क या सम्बन्ध–शिथिलन में आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक या सामाजिक कोई भी कारण हो सकता है।

भाषा (Language) :

जिस प्रकार उपबोली से बोली का क्षेत्र विसतृत होता है तथा प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या भी अधिक होती है, उसी प्रकार बोली से भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है तथा प्रयोगकर्त्ताओं की संख्या अधिक होती है। सामान्यतः समान विशेषताओं वाली कई बोलियों का समूह भाषा है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ आती हैं; यथा–हिंदी भाषा के अन्तर्गत ब्रज, अवधी, हरियाणवी आदि बोलियाँ आती हैं। भाषा निर्माण की प्रक्रिया सायास होती है। जब किसी बोली को राजनीतिक, साहित्यिक और धार्मिक आदि आंदोलनों का सुदृढ़ आधार मिल जाता है, तो उसके प्रयोग की सीमा बढ़ जाती है, उसका साहित्यिक रूप उभर आता है और तब बोली उच्च पद पाकर भाषा बन जाती है। दिल्ली और मेरठ के आसपास बोली जाने वाली 'खड़ी–बोली' का हिंदी भाषा के रूप में विकास इसी प्रकार हुआ है। भाषा–बोली में भेद :– भाषा और बोली के अंतर को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं –

(क) भाषा का क्षेत्र बोली–क्षेत्र की अपेक्षा विस्तृत होता है।

(ख) भाषा के प्रयोग करने वालों की संख्या तत्सम्बन्धित किसी भी बोली के प्रयोग करने वालों की संख्या से अधिक होती है।

(ग) भाषा के अंतर्गत एक या एक से अधिक बोलियाँ हो सकी हैं; जबकि एक बोली में एक से अधिक भाषा नहीं हो सकती।

(घ) एक भाषा की दो बोलियों में पर्याप्त समानता होने से उच्चारण समता तथा बोधगम्यता बनी रहती है, जबकि दो भाषाओं में ऐसा होना आवश्यक नहीं है; यथा–बंगला भाषी व्यक्ति सामान्य रूप में तमिल भाषा समझ नहीं सकता, इसी प्रकार तमिल भाषी व्यक्ति के लिए बंगला भाषा समझना दुष्कर होता है।

(ङ) भाषा का रूप साहित्यिक तथा व्याकरण सम्मत होता है, जबकि बोली मात्र बोल–चाल में प्रयुक्त होती है। बोली का व्याकरण सम्मत होना आवश्यक नहीं है।

(च) भाषा के प्रयोग शिक्षा तथा शासन में होता है, जबकि बोली बोबोलचाल तक सीमित रूप में प्रयुक्त होती है।

(छ) भाषा में साहित्यिक रचना होती है, जबकि बोली में लोक–साहित्य, संस्कृति का जैसा सहज तथा निखरा रूप मिलता है, वैसा रूप भाषा में नहीं मिलता।

(ज) भाषा के साथ बौद्धिकता व्यायाम साहित्य को परिनिष्ठित रूप प्रदान करता है। बोली में सहजता तथा स्वाभाविकता से लोक–साहित्य का मनोरंजक रूप उभरता है।

राजभाषा (Official Language) :

जिस भाषा में प्रदेश या देश का राजकाज होता है, उसे राजभाषा कहते हैं। सामान्य देश की राष्ट्रभाषा ही राजभाषा होती है, क्योंकि जनसामान्य के व्यवहार से जुड़ी राष्ट्रभाषा होने पर इसका प्रयोग सरल हो जाता है। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी संघ की राजभाषा घोषित की गई। इस प्रकार संवैधानिक रूप में हिंदी को यह स्थान प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से हिंदी प्रयोग की अभी पर्याप्त अपेक्षाएँ हैं। हिंदी को राजभाषा का संवैधानिक रूप मिल तो गया है, किंतु कार्य रूप अभी बहुत पीछे है। भारतीय संविधान और राजभाषा अधिनियम के प्रावधान के अनुसार इसके प्रयोग के मुख्य क्षेत्र हैं–शासन, विधान, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका।

राष्ट्रभाषा (National Language) :

किसी देश या राष्ट्र के सभी क्षेत्रों में व्यवहार के लिए प्रयुक्त होने वाली भाषा को राष्ट्र–भाषा कहते हैं। कोई भाषा मानक भाषा बनने के पश्चात् ही राष्ट्रभाषा बन सकती है। राष्ट्रभाषा का पद उस ही भाषा को मिल पाता है, जिससे राष्ट्र के सर्वाधिक लोग परिचित हों तथा उसमें कार्य तथा भावाभिव्यक्ति कर सकते हों। देश के विभिन्न क्षेत्रों तथा प्रदेशों के विभिन्न भाषाभाषी लोग इस भाषा का प्रयोग व्यावहारिक रूप में सार्वजनिक कार्यों में करते हैं। हिंदी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है। अहिन्दी भाषी (बंगाली, मराठी, गुजराती आदि) व्यक्ति भी अपनी–अपनी भाषाओं के साथ सार्वजनिक रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार राष्ट्रभाषा का संबंध पूरे राष्ट्र से होता है और देश की उन्नति राष्ट्रभाषा की उन्नति पर बहुत कुछ निर्भर होती है। देश का अधिकांश साहित्य राष्ट्र–भाषा में रचा जाता है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र को एकसूत्र में बाँधने का सबल माध्यम है। पूरे देश को एकसूत्र में बांधने वाली विशेषता के कारण इसे सम्पर्क भाषा भी कह सकते हैं। देश के विभिन्न क्षेत्रों में हिंदी के क्षेत्रीय रूप मिलते हैं; यथा– बम्बईया हिंदी आदि।

संपर्क भाषा :

भारतवर्ष के अधिकांश व्यक्ति हिंदी समझते और इसका प्रयोग करते हैं। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तो हिंदी का प्रयोग होता है, किन्तु अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी हिन्दी का प्रभावशाली प्रयोग भावाभिव्यक्ति में सहयोगी होता है। जब बंगाल में पंजाबी भाषी प्रदेश का व्यक्ति पहुंचता है बंगाल भाषी को पंजाबी नहीं समझ आती और पंजाबी भाषी को बंगला आती है, तो दोनों हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपना कर संवाद कर लेते हैं। इसी प्रकार दो विभिन्न भाषाओं के अन्तराल में हिन्दी बात–चीत हेतु सेतु बनती है। हिन्दी का संपर्क भाषा रूप देश की एकता का परम आधार है। देशवासियों को हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाना चाहिए।

इस प्रकार हिंदी का प्रयोग विविधता के साथ सामने आता है जो देश की एकता का सबल आधार है।

4.3 हिंदी की संवैधानिक स्थिति

'राजभाषा' का शाब्दिक अर्थ है– राजा की भाषा अर्थात् शासक की भाषा। इस शब्द से राजा और भाषा के महत्व का ज्ञान होता है, किंतु जनतांत्रिक शासन में 'राजा' शब्द का महत्व नहीं है। इस प्रकार राजभाषा का अर्थ है– राजकीय भाषा या राजकाज की भाषा। इसी आधार पर भारत सरकार ने 'राजभाषा आयोग' (Official Language Commission) निर्माण किया है। 14 सितंबर, 1949 को हिंदी भारत संघ की राजभाषा बनी। राजभाषा के प्रयोग के चार मुख्य क्षेत्र हैं– शासन, विधान, न्यायपालिका और कार्यपालिका। स्वतंत्रता पूर्व इन चारों क्षत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व था। इन्हीं चारों क्षेत्रों में हिंदी को प्रतिष्ठित करना ही राजभाषा हिन्दी को महत्व देना है।

भारतवर्ष के संविधान की धारा 343 से 351 के विभिन्न अनुच्छेदों में राजभाषा का प्रावधान किया है। इनमें मुख्यतः चार अध्यायों में चर्चा की गई है संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषा; उच्चत्तम न्यायालय और उच्च न्यायालय और

उच्च न्यायालय की भाषा; राजभाषा संबंधी विदेश नियम। धारा 343 में हिंदी को भारत संघ की राजभाषा और देवनागरी को उसकी लिपि के रूप में मान्यता दी गई है। हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में राष्ट्रीय आन्दोलनों में रही हिंदी–भूमिका का विशेष महत्व रहा है। देश के महापुरूषों, हिंदी–प्रेमियों, नेताओं के साथ सामाजिक और साहित्यिक और साहित्यिक संस्थाओं की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय रही है।

अध्याय –4

नागरी लिपि और हिंदी प्रचार–प्रसार

प्रमुख व्यक्तियों के योगदान

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में भावनात्मक संदर्भ की क्रांति शुरू हुई। उस समय देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। देश में होने वाले आन्दोलनों से जन–जीवन प्रभावित हो रहा था। भारत की राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय आन्दोलन के लए एक भाषा की आवश्यकता सामने आई। इस आवश्यकता के संदर्भ में डॉ0 अम्बा शंकर नागर का मन्तव्य उद्धरणीय है– ''सन् 1857 का आन्दोलन दासता के विरूद्ध स्वतंत्रता का पहला आंदोलन था। यह आन्दोलन यद्यपि संगठन और एकता के अभाव के कारण असफल रहा, पर इसने भारतवासियों के ह्रदय में स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न कर दी। आगे चलकर जब भारत के विभिन्न प्रांतों में स्वतंत्रता के लिए संगठित प्रयत्न आरंभ हुए तो यह स्पष्ट हो गया कि बिना एक सामान्य भाषा के देश में संगठन होना असंभव है।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक, धार्मिक ही नहीं, राजनीतिक आंदोलनों में हिंदी मुख्य भाषा सिद्ध हुई इस प्रकार हिंदी को व्यापक जनाधार मिला। राष्ट्रीय भावना जगाने हेतु हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया गया। विभिन्न व्यक्तियों ओर संस्थानों द्वारा हिन्दी–प्रयोग हेतु आंदोलन के रूप में कार्य किया गया है।

1. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक – लोकमान्य तिलक प्रारंभ में परम विनम्र नेता थे। परिस्थितियों ने उन्हें ओजस्वी नेता बना दिया। 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देने वाले तिलक 'स्वदेशी' के प्रबल समर्थक थे। उनकी मान्यता थी कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा की पदाधिकारी है। उन्होंने हिंदी विषय में कहा था– ''हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सकती है मेरी समझ में हिंदी भारत की सामान्य भाषा होनी चाहिए, यानि समस्त हिन्दुस्तान में बोली जाने वाली भाषा होनी चाहिए।''

   लोकमान्य तिलक देवनागरी को 'राष्ट्रलिपि' और हिदी को 'राष्ट्रभाषा' मानते थे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के दिसम्बर, 1905 के अधिवेशन में कहा था –

   ''भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रभाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अंग है। समान भाषा के द्वारा हम अपने विचार दूसरों पर प्रकट करते हैं। अतएव यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक–दूसरे के निकट लाना चाहें तो सबके लिए समान भाषा से बढ़र सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।'' उन्होंने जनसामान्य तक अपने विचार पहुँचाने के लिए 'हिंदी केसरी' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया। हिंदी का यह पत्र पर्याप्त लोकप्रिय हुआ। लोकमान्य तिलक जीवन भर हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगे हुए थे। उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने के लिए बार–बार आग्रह किया था। निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि उन्होंने अंग्रेजी में भाषण देना छोड़कर हिंदी सीखी और हिंदी के प्रबल समर्थक बन गए थे, यह उनका हिंदी और देश–प्रेम ही था।

2. लाला लाजपतराय – पंजाब केसरी लाला लाजपतराय प्रबल आर्य समाजी देशभक्त थे। वे महान–देश प्रेमी और ओजस्वी वक्ता थे। स्वदेशी वस्तुओं के समर्थक और विदेशी वस्तुओं के विरोधी थे। उन्होंने अंग्रेजी और पंजाबी पत्र के साथ 'वन्देमातरम्' दैनिक उर्दू पत्र का प्रकाशन किया। उन दिनों पंजाब में हिंदी–उर्दू का

विवाद चल रहा था। पंजाब में हिंदी प्रचार–प्रसार में लाला लाजपतराय की बलवती भूमिका थी। उन्होंने सन् 1911 में पंजाब शिक्षा संघ की स्थापना की। शिक्षा में हिंदी को समुचित स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया। सन् 1886 में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो–वैदिक कॉलेज की स्थापना की गई। इससे हिंदी प्रसार का सुदृढ़ आधार मिला। इस कॉलेज में सभी विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ने की अनिवार्यता थी। लाला लाजपतराय के प्रयास से पंजाब विश्वविद्यालय में हिंदी को सम्मानीय स्थान मिला। उन्हीं का प्रयास था कि पंजाब विश्वविद्यालय में रत्न और प्रभाकर के माध्यम से हिंदी को पाठ्यक्रम में स्थान मिला। हरियाणा के विभिन्न विश्वविद्यालयों में इन परिक्षाओं का सूत्रपात भी वहीं से हुआ।

3. पं0 मदन मोहन मालवीय – मालवीय जी महान् राष्ट्रीय नेता थे। उन्हें तीन बार हिन्दु महासभा के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। वे सन् 1884 से राष्ट्रीय कार्यों में समर्पित होकर लग गए थे। वे अपने क्रियाकलापों में हिंदी का प्रयोग करते हुए औरों में भी हिन्दी–प्रेम जगाते रहे हैं। सन् 1886 के अधिवेशन में मालवीय जी के व्याख्यान से प्रभावित होकर काला कांकर के राजा ने इन्हें 'हिन्दुस्तान' दैनिक पत्र का संपादक बनाया था। यहीं से उनकी हिंदी–सेवा का अनुप्रेरक रूप सामने आया है। उन्होंने 1907 ई0 में साप्ताहिक हिंदी 'अभ्युदय' का प्रारंभ किया। यह पत्र सन् 1915 में दैनिक समाचार–पत्र बना। मालवीय जी ने हिंदी प्रचार–प्रसार को गति देने के लिए सन् 1910 में प्रयोग (इलाहाबाद) से 'मर्यादा' हिंदी मासिक पत्रिका और 20 जुलाई, 1933 'सनातन धर्म' हिंदी पत्र का प्रकाशन शुरू किया है। मालवीय जी हिंदी के महान् प्रेमी थे। इनकी प्रेरणा से 'भारत', 'हिन्दुस्तान' और 'विश्वबन्धु' जैसे चर्चित पत्रों का प्रकाशन शुरू हुआ है।

   मालवीय जी के मन में हिंदी के लिए विशेष आदर भाव था, इसलिए उन्होंने शिक्षा में हिंदी की अनिवार्यता पर बल दिया। सन् 1917 में बनारस हिंदु विश्वविद्यालय की स्थापना की दृष्टि से हुई है। यहाँ के सभी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षा अनिवार्य थी। उन्होंने भाषा के विषय में स्पष्ट रूप से कहा था– ''राष्ट्रीय शिक्षा अपनी उत्तमता के उच्च शिखर पर तब तक नहीं पहुंच सकती, जब तक जनता की मातृभाषा अपने उचित स्थान पर शिक्षा के माध्यम तथा सर्वसाधारण के व्यवहार के रूप में स्थापित न की जाए।''

   उन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में हिंदी के लिए प्रबल संघर्ष किया। राजा शिवप्रसाद सितारे–हिंद के साथ न्यायालय में हिंदी और देवनागरी के लिए जोरदार संघर्ष किया। उन्होंने कहा था कि जनता को न्याय दिलाने के लिए न्यायालय की भाषा हिंदी ही होनी चाहिए। न्यायालयों में हिंदी को स्थान दिलाने का श्रेय मालवीय जी को है।

   नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की स्थापना सन् 1893 में हुई। इसकी स्थापना में मालवीय जी की विशेष भूमिका रही है। हिंदी प्रचार के अग्रणी नेता मालवीय जी 10 अक्तूबर, 1910 को सम्पन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष थे। उनकी प्रेरणा से देश में हिंदी के प्रति प्रबल अनुराग और राष्ट्रीयता का भाव जगा है।

4. महात्मा गाँधी – स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गाँधी सजग, साहसी और आदर्श नेता के रूप में सामने आये। भारतीय आदर्शों को समाज में पल्लवित कराने में गाँधी जी ने अपने जीवन का हर पल लगाया। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद हिंदी और हिन्दुस्तान को जगाने में लग गये। सन् 1917 में गुजरात प्रदेश के भड़ौच गुजरात शिक्षा परिषद् के अधिवेशन में उन्होंने अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाने का विरोध किया और हिंदी के महत्त्व पर मुक्तकंठ से चर्चा की थी– ''राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना देश में 'ऐसपेरेण्टों' को दाखिल करना है। अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की कल्पना हमारी निर्बलता की निशानी है।''

महात्मा गाँधी ने सन् 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर के अधिवेशन में हिंदी प्रेम प्रकट करते हुए आह्वान किया था– ''आप हिंदी को भारत का राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य–पालन करना चाहिए।''

भारतवर्ष में शिक्षा के माध्यम पर दो–टूक चर्चा करते हुए गाँधी जी ने 2 सितम्बर, 1921 को कहा था, ''अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए हमारे लड़के–लड़कियों की शिक्षा बन्द कर दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ।''

गाँधी जी की दृष्टि में हिंदी ही भारत की संपर्क भाषा के रूप में आदर्श भूमिका निभा सकती है। उन्होंने विभिन्न व्यक्तियों, पत्र–पत्रिकाओं और संस्थाओं को हिंदी–प्रयोग की अनूठी प्रेरणा दी है। वे हिंदी को राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता की प्राप्ति और सांस्कृतिक उत्कर्ष मानते थे। उन्होंने हिंदी को साधन और साध्य दोनों रूपों में अपनाया था। महात्मा गाँधी के हिंदी–प्रेम और प्रचार–प्रसार के विषय में डॉ0 रामविलास शर्मा का कथन विशेष रूप में उल्लेखनीय है– ''दक्षिण भारत में गांधी जी और उनके अनुयायियों सहयोगियों ने जितना हिंदी प्रचार किया, उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया।''

गाँधी जी हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने हिंदी प्रचार–प्रसार को गति देने के लिए विभिन्न संस्थाओं का विशेष सहयोग लिया था। गाँधी सेवा संघ, चर्खा संघ, हरिजन सेवक संघर्ष आदि का सारा कामकाज हिंदी में होता रहा है। निश्चय ही हिन्दी–प्रसार के प्रयत्न में गाँधी जी की भूमिका अग्रगण्य रही है।

5. राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन– राष्ट्रभाषा हिंदी को संघ की राजभाषा बनाने का जो प्रयास राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने किया है, वह सदा याद किया जाता रहेगा। पं0 मदनमोहन मालवीय के दर्शाये गए मार्ग पर चल कर इन्होंने हिंदी की अनुपमेय सेवा की है। इनके द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से की गई हिंदी की सेवा अनुपमेय रही है। टण्डन जी हिंदी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से थे। इन्हीं की प्रेरणा से महात्मा गाँधी जी भी हिंदी साहित्य सम्मेलन से जुड़े हैं। ये लाला लाजपतराय के साथ मिलकर भी हिंदी के प्रसार में लगे रहे। लाला जी की मृत्यु के पश्चात् टण्डन जी 'लोकसेवा मण्डल' के सभापति बन कर हिंदी प्रसार में लगे रहे। इसका कार्यालय लाहौर में था। इसलिए टण्डन जी ने वहाँ की संस्थाओं के माध्यम से हिंदी का अनुप्रेरक प्रसार किया। ये हिंदी के प्रबल समर्थक थे, गाँधी जी हिन्दुस्तानी के समर्थक थे। टण्डन जी की प्रेरणा से हिंदी सम्मेलन आज भी हिंदी के प्रचार–प्रसार में लगा है। यह टण्डन जी की ही देन है।

6. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद– महात्मा गाँधी और हिंदी के परम् भक्त डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद अखिल भारतीय कॉंग्रेस के सम्माननीय सदस्य थे। विभिन्न हिंदी सम्मेलनों की अध्यक्षता और सहभागिता करते हुए इनका सहज और निकट संबंध महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन से हुआ। देश की सभी हिंदी संस्थाओं से इनका गहरा संबंध था और ये पूरी रूचि और पूरे उत्साह से भाग लेते रहे हैं। वे हिंदी के प्रयोग हेतु सबको प्रेरित करते रहे हैं। उनका हिंदी के संदर्भ का विचार अनुकरणीय है–

''मैं हिंदी के प्रचार, राष्ट्रभाषा के प्रचार को राष्ट्रीयता का मुख्य अंग मानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि यह भाषा ऐसी हो, जिसमें हमारे विचार आसानी से साफ–साफ स्पष्टतापूर्वक व्यक्त हो सकें। राष्ट्रभाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसे केवल एक जगह के ही लोग न समझें, बल्कि उसे देश के सभी प्रांतों में सुगमता से पहुँचा सकें।''

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद पर महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव पड़ा है। हिंदी के प्रचार–प्रसार में इनकी भूमिका को बाँधने के लिए, भारत के भिन्न–भिन्न हिस्से एक–दूसरे से संबंधित रहें, इसके लिए हिंदी की जरूरत है।'' निश्चय ही डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की हिंदी सेवा सदा ही याद की जाएगी। भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में हिंदी को सम्माननीय स्थान दिलाने का श्रेय डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद को है। राष्ट्रपति के रूप में हिंदी और भारतीय भाषाओं को सम्मानजनक स्थान दिलाने का सराहनीय प्रयास किया।

7. काका कालेलकर – हिंदी के प्रचार–प्रसार में अहिंदी भाषियों का नाम गौरव से लिया जाता है। ऐसे हिन्दी–प्रेमियों में काका कालेलकर का नाम विशेष श्रद्धा से लिया जाता है। इन्होंने हिंदी के प्रसार में समर्पित होकर कार्य किया है। उन्होंने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़कर और गुजरात में रहकर हिंदी प्रसार को नई दिशा प्रदान की है। उन्होंने कभी अंग्रेजी का विरोध नहीं किया, किंतु प्रादेशिक भाषाओं के समर्थक थे। उस समय हिन्दुस्तानी का अर्थ था– हिंदी और उर्दू का मिश्रित रूप। अंग्रेजों के शासन और अंग्रेजी के शासन और अंग्रेजी के प्रभाव में 'हिन्दुस्तान' के प्रसार से हिंदी को ही लाभ हुआ है। इससे जन सामान्य में हिंदी के प्रति अनुराग विकसित हुआ है। गाँधी जी के अनुयायी काका कालेलकर का नाम हिंदी–आंदोलन के संदर्भ में सदा याद किया जायेगा।

8. सेठ गोविन्ददास – हिंदी के प्रसार के साथ इसे राजभाषा के प्रतिष्ठित पद पर सुशोभित करवाने में सेठ गोविन्ददास की अविस्मरणीय भूमिका रही है। ये उच्चकोटि के साहित्यकार हैं। आपकी नाट्यकृतियों से हिंदी साहित्य मोहक रूप में समृद्ध हुआ है। उन्होंने जबलपुर से शारदा, लोकमत तथा जयहिंद पत्रों की शुरूआत कर जन–मन में हिंदी के प्रति प्रेम जगाने और साहित्यिक परिवेश बनाने का अनुप्रेरक प्रयास किया है।

   उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़–चढ़कर भाग लिया और हिंदी के लिए सतत प्रयास किया। भारतीय संविधान सभा में हिंदी और हिन्दुस्तानी को लेकर उठे विवाद को शांत करने में सेठ गोविन्ददास का विशेष महत्त्व रहा है। देश के मान्य सांसद और हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में हिंदी के लिए जो प्रेरक कार्य आपने किया है, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

   हिंदी प्रसार के आन्दोलनों में हिंदी–प्रेमियों की लंबी नामावली है। जिनके सतत प्रयास से देश में राष्ट्रीयता का भाव विकसित हुआ, देश स्वतंत्र हुआ और हिंदी को सम्मानजनक स्थान मिला। इनमें स्वामी दयानन्द, श्रद्धानन्द, विनोबा भावे आदि के नाम श्रद्धा से लेने योग्य हैं।

प्रमुख संस्थाओं का योगदान

भारतवर्ष में स्वाधनीता संग्राम के साथ हिंदी का आन्दोलन भी चलाया जा रहा था, वास्तव में हिंदी का यह आंदोलन अंग्रेजी के विरोध में किया गया था। स्वतंत्रता आंदोलन के समय हिंदी या हिन्दुस्तानी ही देश की संपर्क भाषा थी। प्रत्येक आंदोलनकारी 'वन्देमातरम्' या 'जिन्दाबाद' के नारे लगाता था। इस प्रकार भारत देश की राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही थी। हिंदी को राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का आंदोलन चलाया गया है। इस आंदोलन की सफलता पर ही 14 सितंबर, 1949 को हिंदी राजभाषा पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इस आंदोलन से हिंदी का सुंदर परिवेश बना है, इसलिए इस आंदोलन को 'राष्ट्रभाषा हिंदी' या 'राजभाषा हिंदी' से जोड़ सकते हैं।

हिंदी–प्रसार आंदोलन में धर्मगुरुओं, महात्माओं, राजनेताओं और हिंदी–प्रेमियों के साथ अनेक संस्थाओं की भी सराहनीय भूमिका रही है। भारत धर्मप्रधान देश है। इसलिए हिंदी–प्रसार आंदोलन में साहित्यिक संस्थाओं के साथ धार्मिक–सामाजिक संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है।

(अ) धार्मिक एवं सामाजिक संस्थाएँ– उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी शासन की आँच में भारतवासी तप रहे थे। ईसाई

पादरियों को ईसाई धर्म–प्रचार के लिए छूट मिल चुकी थी। उनके द्वारा हिन्दु धर्म को हेय दृष्टि से देखा जाता और निन्दा की जाती थी। भारतीयों को लालच देकर धर्म–परिवर्तन कराया जाता रहा है। यह सच है कि उस समय तक भारत में जाति–पाँति, छूआ–छूत, पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह और अनमेल विवाह आदि विकृतियाँ फैल चुकी थीं। विवश और निरीह हिन्दू विजातीय धर्म स्वीकार कर रहे थे। इस विषम क्रियाकलाप की प्रतिक्रिया पर विविध सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों का सूत्रपात हुआ है। एक ओर सामाजिक और धार्मिक विकृतियों को रोकने का प्रयास शुरू हुआ, तो नैतिक मूल्यों को अनुकूल आधार मिला। इस दिशा में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सनातन धर्म सभा, प्रार्थना सभा, थियोसोफिकल सोसायटी आदि संस्थाओं की भूमिका से समाज में आशा की किरण जगमगाई है। इन संस्थाओं के द्वारा राष्ट्रीय भाव जगाने के लिए हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाया गया।

1. ब्रह्म समाज – भारतीय आदर्श और संस्कृति के पुजारी राजा राममोहन राय ने सन् 1828 में कलकत्ते में 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। उन्होंने जब ईसाई धर्म–प्रचार से भारतीयों की मानसिकता पर पड़ने वाले प्रभाव को देखा और वे धर्म–परिवर्तन की प्रक्रिया से आन्दोलित हुए तब उन्होंने पुनर्जागरण के लिए 'ब्रह्म समाज' को चिन्तन का केन्द्र बनाया।

   देश में राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक चेतना जगाने में ब्रह्म समाज की अनूठी भूमिका रही है। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने युगीन संदर्भ में आधुनिक विचार–चिन्तन को स्वीकार किया। उनके व्यक्तित्व में पूर्व और पश्चिम का अनुपम समन्वय था। वे अंग्रेजी को एक महत्त्वपूर्ण भाषा के रूप में सम्मान देते थे, किंतु राष्ट्रीय संदर्भ में हिंदी के सबल समर्थक थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि भारतवर्ष में राष्ट्रीयता के भाव से सम्पन्न अखिल भारतीय भाषा बनने की क्षमता मात्र हिंदी में है। उनकी विद्वता और राष्ट्रीयता का स्पष्ट बोध इससे होता है कि उन्होंने 'बंगदूत' नामक पत्र कलकत्ता से प्रकाशित किया। इसके पत्र में हिंदी, बंगला, अंग्रेजी और फारसी के पृष्ठ हुआ करते थे। वे स्वयं हिंदी में लिखते तथा हिंदी में लिखने के लिए दूसरों को भी प्रोत्साहित करते रहते थे। अहिंदी भाषा क्षेत्र बंगाल में 'ब्रह्म समाज' की भूमिका विशेष सराहनीय रही है। समाज–सुधार और हिंदी–प्रचार में अनेक विद्वान नेता तन–मन से लग गए थे। इस संदर्भ में महर्षि देवेन्द्र नाथ, केशव चन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर और नवीन चन्द्र राय के नाम श्रद्धा से लेते हैं। इस समाज द्वारा अधिकांश पुस्तक हिंदी में प्रकाशित की गई। इस संस्था के सभी सदस्यों से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाने का आह्वान किया गया। नवीन चन्द्र राय ने पंजाब पहुँच कर 1867 में 'ज्ञानप्रदायिनी' पत्रिका निकाल कर हिंदी–आंदोलन को गति दी। भूदेव मुखर्जी ने बिहार की शिक्षा में हिंदी को प्रतिष्ठित किया और वहाँ के न्यायालयों में हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग का मार्ग खोला। उन्होंने अपनी पुस्तक 'आचार–प्रबन्ध' में हिंदी को सर्व उपयोगी गुणसम्पन्न देश की संपर्क भाषा के रूप में अपनाने का आह्वान किया। केशव चन्द्र सेन की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द ने हिंदी में व्याख्यान देना शुरू किया। उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना हिदी में की। सेन ने सन् 1875 में 'सुलभ समाचार' निकालकर उस आंदोलन को अधिक मुख रूप प्रदान किया। उनकी मान्यता थी कि हिंदी देश की सर्वाधिक प्रचलित भाषा है, इसलिए यह भाषा ही राष्ट्रीय एकता का आधार बन सकती है।

2. आर्य समाज– भारतवर्ष के सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों में आर्य समाज का स्थान सर्वोपरि है। आर्य समाज की स्थापना 1875 ई0 में, बम्बई में स्वामी दयानन्द द्वारा समाजोत्थान के लिए की गई थी। आर्य समाज द्वारा पूरे देश में स्वराज, धर्म और हिंदी भाषा के लिए आंदोलन किया गया। आर्य समाज के आन्दोलनकारी हिंदी को 'आर्यभाषा' नाम से संबोधित कर अपना सारा कार्य इसमें ही करते थे। आर्य समाज के 28 नियमों में पाँचवां नियम हिंदी पढ़ना था। आर्य समाज के बढ़ते ही कदम लाहौर पहुँचे और 24 जनवरी, 1877 को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई। आर्य समाज का सत्संग और सम्मेलन हिंदी में

ही होता था। इसलि हिंदी–प्रसार को सुन्दर आधार मिला। आर्य समाज द्वारा गुरूकुलों, कन्या–पाठशालाओं और महिला–विद्यालयों की स्थापना की, जिनमें हिंदी की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। गुरूकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम विज्ञान की शिक्षा हिंदी में देने की सफल व्यवस्था की गई। इस विषय में श्री इन्द्रविद्यावाचस्पति का कथन उद्धरणीय है, ''भारत में पहला शिक्षणालय, जिसमें राष्ट्रभाषा के माध्यम द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान की शिक्षा का सफल परीक्षण किया गया, गुरूकुल काँगड़ी था।''

आर्य समाज के द्वारा सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष के लिए हिंदी में अनेक साप्ताहिक और मासिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई। भारत की जनता स्वामी दयानन्द के विचार पढ़ना चाहती थी। इन पत्र–पत्रिकाओं में ऐसे विचार प्रकाशन से हिंदी पर्याप्त लोकप्रिय बनी। स्वामी जी पहले संस्कृत में व्याख्यान देते थे, किंतु कलकत्ता के ब्रह्म समाज के नेता केशव सेन के आग्रह पर उन्होंने हिंदी को अपनाया हैं इस प्रकार हिंदी–प्रसार को लोकप्रिय आधार मिला। स्वामी जी के परम सहयोगी इन्द्रविद्यावाचस्पति ने स्वामी जी के हिंदी–प्रेम के महत्व के विषय में लिखा है –

''महर्षि ने लोक–भाषा को उपदेश का साधन बनाकर न केवल अपने मिलशन को लोकप्रिय और व्यापक बना दिया। भविषय में राष्ट्रभाषा बनाने वाली आर्य को पुष्टि देकर राष्ट्र के स्वाधीनता–भवन की दृढ़ बुनियाद भी रख दी।''

गुजराती भाषा स्वामी जी के हिंदी–प्रेम से उनके अनुयायियों में अनुकरणीय हिंदी प्रेम जगा। श्री राम गोपाल के शब्दों में, ''उनके अनुयायियों के धर्म–प्रचार से जो अधिक उत्तम चीज राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त हुई, वह थी राष्ट्रभाषा का प्रचार।'' आर्य समाज के माध्यम से हिंदी का प्रचार भारत से बाहर मॉरिशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, ट्रिनीडाड–डुबैगो, युगांडा और लंदन में हुआ। आर्य समाज ने जैसा प्रेकर कार्य सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में किया, इसी प्रकार हिंदी–प्रसार में सर्वोत्तम कार्य किया।

3. सनातन धर्म सभा – ब्रह्मम समाज और आर्य समाज के द्वारा मूर्तिपूजा और बहुदेवतावाद के प्रबल विरोध की प्रतिक्रिया में सन् 1973 में 'सनातन धर्म–रक्षिणी सवभा' की स्थापना हरिद्वार और दिल्ली में की। सन् 1900 में पं0 मदन मोहन मालवीय आदि ने सभा को व्यवस्थित रूप प्रदान किया। सभा का मुख्य उद्देश्य था– हिन्दू धर्म की स्मृतियों और पुराण आदि का शास्त्रों के आधार पर सुधार कार्य। सनातन धर्म की हजारों शाखाएँ भारत वर्ष के विभिन्न प्रान्तों में खुलीं। इस सभा का अधिकांश कार्य संस्कृत और हिंदी–प्रसार को बल मिला। सनातन धर्म सभा के माध्यम से देश के विभिन्न प्रदेशों में शिक्षण संस्थाएँ शुरू हो गई। इनमें हिंदी को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। उत्तर–भारत क्षेत्र में इसको आशातीत सफलता मिली। पं0 मदन मोहन मालवीय के प्रिय शिष्य गोस्वामी गणेश दत्त इस सभा के कर्णधार थे। इनका जन्म पंजाब के लायलपुर (पाकिस्तान) में हुआ था। उन्होंने सर्वप्रथम लायलपुर में एक गुरूकुल की स्थापना की। इसमें संस्कृत–हिंदी अध्ययन–अध्यापन व्यवस्था थी। इसके पश्चात् सैंकड़ों संस्थाएँ खुली। इससे पंजाब में हिंदी का व्यापक प्रचार हुआ। गोस्वामी जी ने सन् 1940 में 'विश्वबन्धु' दैनिक समाचार–पत्र का श्रीगणेश किया। भारत विभाजन के बाद इन्होंने अपना कार्यक्षेत्र हरिद्वार बनाया। सन् 1947 में दिल्ली में 'अमर भारत' हिंदी दैनिक का प्रकाशन किया।

गोस्वामी गणेश दत्त के साथ हिंदी प्रसार में योगदान देने वालों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। सनातन धर्म सभा के सतत प्रयास से भारत में मुख्यतः उत्तर भारत में हिंदी जन–मानस की भाषा बनीं।

4. प्रार्थना समाज – भारत वर्ष में सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा में सुधार के लिए महाराष्ट्र में 'परमहंस सभा' की स्थापना सन् 1849 में हुई। ब्रह्म समाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन के बम्बई आगमन पर सन् 1867 में

इस सभा को नया रूप देकर 'प्रार्थना समाज' के आधार पर प्रभावी कार्य शुरू किया गया। इस संस्था द्वारा समाज में व्याप्त जाति–पाति, अछूत और नारी–समस्याओं को दूर करने का सतत् प्रयास किया गया। इस समाज का अधिकांश कार्य हिंदी में किया जाता था। साप्ताहिक प्रवचनों हिंदी–प्रयोग से महाराष्ट्र में हिंदी का प्रेरक परिवेश बना है। इस समाज के सक्रिय नेताओं में न्यायाधीश महादेव गोविंद रानाडे और आर. जी. भण्डारकर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। गोविंद रानाडे ने हिंदी और नागरी लिपि के प्रयोग और प्रसार का सतत् प्रयास किया है। निश्चय ही हिंदी प्रसार आंदोलन में प्रार्थना समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

5. थियोसाफिकल सोसायटी – इस सोसायटी की स्थापना भारतीय दर्शन और संस्कृति के प्रभाव से 'विश्व–बन्धुत्व' भाव जगाने हेतु सन् 1875 में अमेरिका में हुई। इसके संस्थापक मदाम ब्लावत्स्की और कर्नल आलकोट थे। सन् 1897 में इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में स्थापित किया गया। इस संस्था पर आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद का विशेष प्रभाव पड़ा। इस संस्था ने स्वामी जी को अध्यात्म गुरू भी माना है। इसके उद्देश्य ब्रह्म समाज और आर्य समाज से बहुत कुछ मेल खाते हैं। सन् 1893 में श्रीमती एनी बेसेंट ने इस संस्था का नेतृत्व अपने हाथों में लिया। उन्होंने सन् 1898 में काशी में सेंट्रल हिंदू कॉलेज और हिंदू कन्या विद्यालय की स्थापना की। इसके साथ ही देश के विभिन्न प्रांतों में शिक्षण संस्थाएँ खोलीं। इन विद्यालयों और महाविद्यालयों में भारतीय संस्कृति की शिक्षा हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में दी जाती थी। इस सोसायटी पर अंग्रेजी का भी प्रभाव दिखाई देता है, किंतु इनकी जो भी प्रचारादि सामग्री छपती, वह अंग्रेजी के साथ हिंदी में भी होती थी। इस प्रकार हिन्दी–प्रसार को सुअवसर मिला। स्वाधीनता संग्राम के प्रति विशेष लगाव होने के कारण सन् 1918 से सन् 1921 तक इन्होंने दक्षिणी भारत में घूम–घूमकर हिंदी का प्रचार किया था। उन्होंने हिंदी का महत्त्व अपनी पुस्तक 'नेशन बिल्डिंग' में लिखा है– ''हिंदी जानने वाला आदमी संपूर्ण भारत में यात्रा कर सकता है और उसे हर जगह हिंदी बोलने वाले मनुष्य मिल सकते हैं। हिंदी सीखने का कार्य ऐसा त्याग है, जिसे दक्षिणी भारत के निवासियों को राष्ट्र की एकता के हित में करना चाहिए।

श्रीमती एनी बेसेंट ने सन् 1928 में मद्रास (चेन्नई) में हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में हिंदी–संदर्भ में प्रेरक वक्तव्य दिया था– ''मेरा विश्वास है कि हिंदी भारत वर्ष की मुख्य (संपर्क) भाषा होगी। मेरा विचार है कि भारतवर्ष की शिक्षा में हिंदी अनिवार्य होनी चाहिए।'' इस प्रकार के विचारों और गतिविधियों से हिंदी–प्रसार को अनुकूल दिशा मिली है।

(आ) साहित्यिक संस्थाएँ –भारतवर्ष एक लंबे समय तक दासता की बेड़ी में जकड़ा रहा। हिंदी के प्रचार–प्रसार हेतु समय–समय पर अनेक साहित्यिक संस्थाओं की स्थापना होती रहती है। राष्ट्रीय भाव जगाने और हिंदी के प्रचार–प्रसार में इन संस्थाओं का विशेष योगदान रहा है। इनमें कुछ संस्थाओं का उल्लेख किया जा रहा है –

1. भारतेन्दु मण्डल – आधुनिक हिंदी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिशचन्द्र ने साहित्यकारों का एक मण्डल बनाया था। यह मण्डल हिंदी साहित्य के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन का अभिलाषी था। मण्डल के सदस्यों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए हिंदी साहित्य की विविध विधाओं पर महत्वपूर्ण कृतियों की रचना की, पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। भारतेन्दु हरीशचन्द्र ने हिंदी पर व्याख्यान देते हुए कहा था–

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।''

भारतेन्दु मण्डल की गतिविधियों से सामाजिक क्षेत्र में जागकरण का परिवेश बना, तो स्वदेशी आंदोलन को प्रभावी आधार मिला है। हिन्दी–प्रेम के कारण जन–सामान्य में हिंदी लोकप्रिय हुई। भारतेन्दु हरीशचन्द्र के

साथ इस मंडल के सक्रिय सदस्य थे– पं0 प्रताप नारायण मिश्र, पं0 बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी, श्रीनिवास दास, बालमुकुंद गुप्त, रमाशंकर व्यास और तोताराम आदि।

2. नगरी प्रचारिणी सभा, काशी– इस सभा की स्थापना 10 मार्च, 1983 में हुई। इस संस्था को संरक्षक के रूप में बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री गोपाल प्रसाद खत्री ओर पं0 राम नारायण मिश्र आदि का आर्शीवाद मिला। इस संस्था से अन्य जुड़ने वाले गणमान्य विद्वानों में महामना मदन मोहन मालवीय, श्रीधर पाठक, श्री अम्बिका दत्त व्यास, श्री राधाचरण गोस्वामी और बदरी नारायण चौधरी आदि प्रमुख हैं। कोश–रचना, हिंदी साहित्य के इतिहास–लेखन, हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और संगोष्ठी आयोजन में यह संस्था देश में शीर्ष स्थान पर है।

   कामता प्रसाद गुरु रचित 'हिंदी व्याकरण' पं0 किशोरी वाजपेयी कृत 'हिंदी शब्दानुशासन' के अतिरिक्त 'हिंदी शब्दसागर', 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास' आदि के दुर्लभ और महत्वपूर्ण प्रकाशन से इस संस्था को हिंदी–विकास में विशेष महत्त्व मिला है। 'नागरी प्रचारिणी' शोध–पत्रिका का लगभग सौ वर्षों का गरिमामय इतिहास इस संस्था की गौरव गाथा का स्वरूप है। इस संस्था ने नागरी लिपि के सुधार, आशुलिपि (शार्टहैंड) और टंकण (टाइप) संदर्भ में अनुकरणीय पहल की है। नागरी प्रचारिणी सभा का लगभग सौ वर्षों का इतिहास हिंदी प्रचार–प्रसार के श्रेष्ठ और प्रेरक संदर्भ को प्रस्तुत करता है। यह सभा आज भी हिंदी के प्रचार–प्रसार के साथ हिंदी साहित्य को समृद्ध करने में लगी है।

3. हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग – सम्मेलन हिंदी प्रचार–प्रसार की सर्व–प्रमुख साहित्यिक संस्था है। सन् 1910 में सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हुआ। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इसी समय न्यायालय में हिन्दी और देवनागरी प्रयोग पर बल दिया। सम्मेलन द्वारा हिंदी प्रचार–प्रसार और हिंदी–विकास के लिए नियम बनाए गए। इनमें प्रमुख थे – राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रलिपि देवनागरी का प्रचार, हिंदी भाषी प्रदेशों की शिक्षण संस्थाओं के साथ न्यायालयों में हिंदी का प्रयोग, देवनागरी में छपाई की समुचित व्यवस्था, हिंदी साहित्य की विविध विधाओं का विकास, हिंदी विद्वानों और साहित्यकारों का सम्मान और हिंदी प्रचार–प्रसार हेतु हिंदी की उच्च परीक्षाओं का आयोजन।

   सम्मेलन द्वारा उक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सतत् प्रयत्न किया जाता रहा है। सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन अर्थात् सन् 1913 से हिंदी के व्यापक प्रचार हेतु प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा आदि परीक्षाओं का आयोजन शुरू हुआ। सम्मेलन की त्रैमासिक 'सम्मेलन पत्रिका' शोधपरक और अन्वेषणात्मक आलेखों के आधार पर सतत् प्रकाशित होती रही हैं। 'राष्ट्रीाषा संदेश' पत्र भी हिंदी प्रचार–प्रसार की आकर्षक भूमिका में हैं। हिंदी का चर्चित शब्दकोश 'मानक हिंदीकरण' पाँच खण्डों में प्रकाशित करना गरिमा का विषय है। सन् 1963 में भारत सरकार के द्वारा लोक सभा में एक विशेष स्वीकृति कर 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' को राष्ट्रीय महत्त्व की संस्था के रूप में मान्यता दी गई है। इस प्रकार हिंदी प्रचार–प्रसार में सम्मेलन का सर्वोपरि महत्त्व है।

4. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास– महात्मा गाँधी ने हिंदी सम्मेलन के सन् 1918 के इन्दौर के अधिवेशन में दक्षिण में हिंदी प्रचार की योजना बनाई। उनके पुत्र श्री देवदास गाँधी दक्षिण भारत में प्रथम हिंदी प्रचारक के रूप में गए। दक्षिण भारत में प्रचारार्थ श्री सत्यदेव परिव्राजक आदि वहाँ पहुँचे। वहाँ प्रारंभ में हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से प्रचार हुआ। सन् 1927 में इसे दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास नाम दिया गया। इसके संस्थापकों में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सभा के द्वारा दक्षिण के प्रांतों में हिंदी का प्रेरक प्रचार किया गया। हिंदी भाषा के प्रचारार्थ प्रवेशिका विशारद्, पूर्वार्द्ध, विशारद् उत्तरार्द्ध, प्रवीण तथा हिंदी प्रचारक आदि परीक्षाओं का संचालन किया जाता है। सभा की प्रवेशिका, विशारद् और प्रवणी परीक्षाओं को केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा मान्यता मिली है। यहाँ से मासिक 'हिन्दी प्रचार समाचार' और 'दक्षिणी भारत' द्विमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है। केन्द्र सरकार ने सभा को श्रेष्ठ हिंदी प्रचारक मानकर राष्ट्रीय महत्व प्रदान किया है।

5. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा – हिंदी साहित्य सम्मेलन का 25वाँ अधिवेशन सन् 1936 में नागपुर में हुआ। डॉ0 राजेन्द्र प्रसार सम्मेलन के अध्यक्ष थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के प्रस्तावानुसार दक्षिण में हिंदी प्रचारार्थ 'हिन्दी प्रचार समिति' का गठन किया गया। इसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में वर्धा में हुआ। काका कालेलकर के सुझाव पर इसका नाम बदल कर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। इस समिति का मुख्य उद्देश्य हिंदी–प्रचार था और इसी आधार पर समिति मानती थी 'एक ह्रदय हो भारत जननी' समिति ने हिंदी प्रचार–प्रसार के लिए सन् 1938 से अपनी परीक्षाओं का संचालन शुरू किया। समिति ने जुलाई 1943 से 'राष्ट्रभाषा' मासिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। इसके पश्चात् 'राष्ट्रभारती' पत्रिका का प्रकाशन किया गया। इस समिति के देश से बाहर लंका, स्याम, सुमात्रा, मॉरिशस, इंग्लैंड आदि देशों में केन्द्र हैं।

   समिति सम्मान और पुरस्कार से भी हिन्दी प्रचार–प्रसार को दिशा प्रदान करती है। इस समिति की गतिविधियों से हिन्दी को विशेष बल मिला है। इनके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; हिंदी विद्यापीठ, मुम्बई; महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना और बिहार राष्ट्रभाषा, पटना आदि की हिंदी प्रचार–प्रसार भूमिका उल्लेखनीय है।

4.4 नागरी लिपि का नामकरण और विकास

भाषा का प्रारंभिक रूप संकेत भाषा है, तो लिपि का प्रारंभिक रूप चित्रात्मक रहा है। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर भारत की प्राचीनतम लिपि सिंध घाटी से प्राप्त लिपि है। सिंध क्षेत्र के मोहनजोदड़ों और पाकिस्तान के हड़प्पा से मिले सिक्कों में प्राचीन लिपि के संकेत मिलते है।। इन लिपि–चिह्नों के विकास का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है।

ब्राह्मी भारतीय की प्राचीनतम लिपि है। इसका प्राप्त प्राचीनतम रूप ई0 पूर्व 500वीं शताब्दी का हैं इसका प्राचीनतम रूप उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के पिपरावा के स्तूप में मिलता है। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग ई0 पूर्व, 500वीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी तक होता रहा है। इसके पश्चात् गुप्त लिपि का उद्भव हुआ। गुप्त लिपि 200 वर्षों तक प्रयुक्त होने के पश्चात् कुटिल रूप का प्रयोग 8वीं शताब्दी तक होता रहा है। नौंवी शताब्दी में प्राचीन देवनागरी का रूप सामने आया है। भारत के अनेक लिपियाँ प्राचीन नागरी लिपि से विकसित हुई है। अध्ययन की सुविधा के लिए प्राचीन नागरी को दो भागों में विभक्त कर अध्ययन किया जा सकता है।

प्राचीन नागरी

पूर्वी भाग	पश्चिमी भाग
मैथिली, बंगला, उड़िया	देवनागरी, गुजराती, महाजीन, राजस्थानी, मराठी

नागरी का वास्तविक विकास अभी खोज का विषय है। वैसे प्रारंभिक प्राप्त रूप गुजरात के नरेश जयभट्ट (700–800 ई0)के शिलालेख में मिलता है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस लिपि का प्रारंभिक विकास गुजरात और कोंकण में हुआ। इसके पश्चात् उत्तर भारत में हुआ। यह मान्यता उचित नहीं, क्योंकि उत्तर भारत से प्राप्त तथ्यों से नागरी के उत्तर भारत में विकसित होने के तथ्य मिलते हैं।

दसवीं शताब्दी से 15वीं शदी तक नागरी चिह्नों में विशेष सुधार चलता रहा है। यह परिवर्तन मुख्यतः सरल और सुंदर बनाने के प्रयत्न से हुआ है। दसवीं शती के प्रारंभिक रूप जाइक देव के समय के मिले मोरबी के दान–पत्रों, नेपाली में मिले हस्तलिखित ग्रंथों में देख सकते हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के पश्चात् विकसित रूप नागरी के वर्तमान चिह्नों से बहुत कुछ मेल खाते हैं। नागरी के सतत् विकसित रूप में रेखांकन योग्य कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. लिपि चिह्नों को सरल और सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है।
2. लिपि–चिह्नों में स्पष्टता लाने का प्रयत्न दिखाई देता है।
3. लिपि–चिह्नों में आकर्षक और व्यवस्थित रूप देने के लिए शिरोरेखा लगाने का प्रयत्न स्पष्ट होता है।
4. लिपि–चिह्नों में स्पष्ट लेखन के साथ त्वरा–लेखन–गुण विकसित करने का प्रयत्न किया गया है।

नागरी लिपि के विकास अध्ययन में विभिनन शिलालेखों, भोज–पत्र के लेखों, सिक्कों, पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथों का सहयोग लिया गया है। इनमें प्रयुक्त नागरी के लिपि–चिह्नों से उनके क्रमिक विकास का ज्ञान होता है। नागरी चिह्नों के विकास को प्रस्तुत करने के लिए कुछ एक चिह्नों का विकास क्रम प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

(अ)– यह नागरी का अर्थ विवृत मध्य स्वर है। दसवीं शताब्दी में इसका रूप राजा जाइक देव काली मोरबी से मिले दानपत्र में मिलता है। ग्यारहवीं शती में लगभग मिलता–जुलता चिह्न धार से मिले राजा भोज के कर्मशतक में है। बारहवीं शती के हैहय वंशी राजा जाजाल्देव के लेख में और तेरहवीं शती का रूप आबू के परमार का राता के औरिया के लेख में मिलता है। इसके पश्चात् इसमें सरलीकृत और सुन्दर रूप का विकास हुआ है।

(ह)– नागरी वर्णमाला का अंतिम वर्ण है। इसका प्रारंभिक रूप ई0 पूर्व तीसरी शती के अशोक के गिरनार के लेख में मिलता है। नागरी का यह चिह्न सर्वप्रथम दसवीं शताब्दी के मोरबी से मिले राजा जाइक देव के दानपत्र में प्राप्त हुआ। तेरहवीं शती में आबू के परमार राजा धारावर्ष के समय के लेख में इसका विकसित रूप मिलता है। इसके बाद नागरी का वर्तमान 'ह' चिह्न विकसित हुआ है।

किसी भी लिपि के दो मुख्य भाग होते हैं– प्रथम, वर्ण और द्वितीय अंक। नागरी के अंकों का विकास भी शिलालेखों, पत्रों और हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर दर्शाया जा सकता है; यथा– (एक) ब्राह्मी में इसका रूप छोटी पाई–लगभग योजक चिह्न के समान '–' प्रयोग होता था। गुप्तकाल तक यही रूप प्रयुक्त होता रहा है। नौवीं शताब्दी में यह रूप घुमाकर नीचे की ओर कर दिया गया। दसवीं शताब्दी में इसके उपरी सिरे को घुण्डीदार बनाने का प्रयत्न किया गया है। यह रूप दसवीं शती के चालुक्य मूलराज के दानपत्र में देखा जा सकता है। इसके पश्चात् उपर के भाग को पूर्णरूपेण घुण्डीदार बनाकर सुंदर बनाया गया है। अंकों के विकास में किसी न किसी अंश में घुण्डीदार रूप अवश्य विकसित हुआ है। नागरी वर्णों में शिरोरेखा का सतत् विकास और चिह्नों में गोलांश या घुण्डीदार रूप–विकास इनकी रेखांकर योग्य विशेषता है।

प्रतिनिधि वर्ण–अंक–चिह्न का विकास

10वी शती	13वीं शती	15वीं शती	17वीं शती	21वीं शती
अ–ग्र	अ	अ	अ	अ
ह्	ह	ह	ह	ह

अंक

1	1	1	1	1

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारत की प्राचीनता लिपि ब्राह्मी से क्रमशः विकसित होती विभिन्न लिपियों के क्रम में नौंवी शताब्दी में प्राचीन नागरी का रूप सामने आया है। इसके पश्चात् नागरी का विकास हुआ है। नागरी लिपि के चिह्नों को उस समय से लगातार सरल, सुंदर और वैज्ञानिक रूप प्रदान करने के प्रयत्न से वर्तमान रूप सामने आया है। वर्तमान समय में प्रयुक्त नागरी लिपि किसी भी अन्य लिपि से कहीं अधिक वैज्ञानिक है।

4.5 नागरी लिपि की वैज्ञानिकता

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा की लिपि देवनागरी है। संवैधानिक रूप में नागरी को राजलिपि का पद प्राप्त है। विश्व की कोई भी वर्णमाला नागरी के समान सर्वांगीण और वैज्ञानिक नहीं है। माना सभी को अन्य वस्तुओं की भाँति अपनी भाषा तथा लिपि ही अच्छी लगती है, किंतु नागरी की वैज्ञानिकता को कोई भी विद्वान अस्वीकार नहीं कर सकता है। यदि भारतवर्ष की सभी भाषाओं को नागरी लिपि में भी लिखा जाए, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ जाएगी। इस लिपि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

चिह्न संख्या

कहा जाता है कि, नागरी में चिह्नों की संख्या बहुत अधिक है, रोमन में मात्र 26 चिह्न हैं। विचार करने पर नागरी में स्वर–लगभग 10, मात्रा–लगभग 1, व्यंजन–33 अर्थात् 52 चिह्न हैं। अंग्रेजी में छोटे+बड़े अक्षर अर्थात् 26+26 = 2.2 चिह्न हैं। इस प्रकार नागरी के चिह्नों को अधिक कहना तर्क संगत नहीं है। इनकी संख्या अनुकूल है।

आदर्श वर्गीकरण

नागरी वर्णमाला का वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक है। नागरी वर्णमाला को मुख्यतः दो वर्गों में विभक्त किया गया है। स्वर तथा व्यंजन। स्वर को प्रारंभ में तथा व्यंजन को बाद में स्थान दिया गया है।

स्वर – जिन वर्णों का उच्चारण किसी अन्य वर्ण की सहायता के बिना किया जा सके और मुख–विवर से हवा अबोध गति से बाहर निकले, उन्हें स्वर की संज्ञा दी जाती है; यथा–अ, इ, ई, उ, ऊ आदि।

व्यंजन – जिन संकेतों (वर्णों) का उच्चारण स्वर की सहायता के बिना न किया जा सके तथा उच्चारण में हवा गति में मुख–विवर में न निकल सके, ऐसी ध्वनि के उच्चारण के समय हवा का घर्षण करती हुई संकीर्ण मार्ग से निकलती है। इस प्रकार मार्ग में वायु का पूर्ण या अपूर्ण अवरोध होता है, ऐसे वर्णों को व्यंजन की संज्ञा दी जाती है; यथा–क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ आदि।

(क) स्वर वर्गीकरण : स्वर वर्णों की व्यवस्था अपने में पर्याप्त वैज्ञानिक है।

1. मात्रानुसार–नागरी के स्वरों के ह्रास्व, दीर्घ तथा लुप्त रूपों की व्यवस्था द्रष्टव्य है –

(क) ह्रस्व–जिन स्वरों के उच्चारण में अपेक्षाकृत सीमित समय लगता है; जैसे–अ, इ, उ।

(ख) दीर्घ–जिन स्वरों के उच्चारण में ह्रस्व से लगभग दूना समय लगता है, जैसे–आ, ई, उ।

(ग) प्लुत–जिन स्वरों के उच्चारण में दीर्घ स्वर से भी अधिक समय लगता है, ह्रस्व से लगभग तीन गुना समय लगे; जैसे –ओउम् में ओऽ।

2. आकृति के अनुसार– स्वरों की आकृति के अनुसार की गई व्यवस्था महत्वपूर्ण है।

(क) मूल स्वर – जिन संकेतों में मात्र एक स्वर होता है; यथा– अ, इ, उ।

(ख) संयुक्त स्वर – जिन संकेतों में मात्र एक स्वर हों; यथा– ए = अ+इ, ऐ = अ+ई, ओ = अ+उ, औ = अ + ऊ।

(ख) व्यंजन–वर्गीकरण

1. वर्ग–विभाजन – नागरी में 55 व्यंजनों के वर्ग की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था है– कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग तथा पवर्ग में क्रमशः कण्ठ्य, तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्तय तथा ओष्ठ्य लिपि चिह्न।

   (क) कवर्ग– इस वर्ग की व्यंजन ध्वनियाँ जीभ के चिह्न भाग से उच्चारित होती हैं। इसलिए इन्हें कण्ठ्य ध्वनि–चिह्न कहते हैं; यथा– क, ख, ग आदि।

   (ख) चवर्ग– इस (तालव्य) वर्ग की व्यंजन–ध्वनियों का उच्चारण जीभ की नोक से कठोर तालु पर झटके से मिलने से होता है; यथा– च, छ आदि।

   (ग) टवर्ग – इस (मूर्द्धन्य) वर्ग के व्यंजन–चिह्नों का उच्चारण मूर्द्धा की सहायता से होता है; यथा– ट, ठ, ड, ढ, ण आदि।

   (घ) तवर्ग– इस (दन्त्य) वर्ग की व्यंजन–ध्वनियों का उच्चारण दाँत के साथ जीभ की नोक के मिलने से होता है; यथा – त, थ, द आदि।

   (ड़) पवर्ग – इस (ओष्ठ्य) वर्ग की व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण दोनों ओठों की सहायता से होता है; उदाहरणार्थ– प, फ, ब, भ, म।

2. प्राणत्व–आधार : व्यंजन वर्णों के उच्चारण–संदर्भ में निकलने वाली हवा को ध्यान में रखकर की गई लिपि–चिह्नों की व्यवस्था उत्तम कोटि की है।

   (क) महाप्राण–जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा का प्रवाह तीव्र हो तथा हकारत्व विद्यमान हो। प्रत्येक वर्ग की द्वितीय तथा चतुर्थ ध्वनियाँ –

   कवर्ग – ख, (Kh), घ (gh), चवर्ग– छ (Chh), झ (Jh)

   टवर्ग – ठ (Th), ढ (Dh), तवर्ग – थ (Th) ध (Dh)

   पवर्ग – फ (Ph), भ (Bh)

   (ख) अल्पप्राण–जिन व्यंजनों ध्वनियों के उच्चारण में हवा का प्रवाह मंद हो तथा हकारत्व का अन्त न हो। प्रत्येक वर्ग की प्रथम, तृतीय तथा पंचम व्यंजन ध्वनियाँ –

   कवर्ग–क, ग, ड़, चवर्ग– च, ज, झ, त्र

   टवर्ग – ट, ड, ण तवर्ग – त, द, न

   पवर्ग – प, ब, म

3. नासिक्य–आधार : जिन व्यंजनों के उच्चारण में हवा मुख्यतः नाक से निकले, उन्हें नासिक्य व्यंजन कहते हैं। नागरी लिपि के प्रत्येक व्यंजन वर्ग में अनुनासिक व्यंजन को अंत में पाँचवें स्थान पर व्यवस्थित किया है; यथा– क, च, ट, त और पवर्ग के क्रमश नासिक्य ध्वनि–चिह्न हैं–ङ, ण, न, म।

4. संयुक्तानुसार : नागरी वर्णमाला में सामान्य रूप से सरल व्यंजनों को स्थान दिया गया है– संयुक्त व्यंजन वर्णमाला में नहीं है। प्रयोग आव यक होने पर संयुक्त और द्वित्व रूप बना लेते हैं; यथा–

   (क) सरल व्यंजन–क, ख, च, त आदि।

   (ख) संयुक्त व्यंजन – क्ष (क्ष), त्र (त्र), ज्ञ (जत्र)

   (ग) द्वित्व व्यंजन – क्क, त्त, द्द, (पक्का, रत्ती, भद्दा) आदि।

लिपि–संकेत नाम तथा ध्वनि–अनुरूपता

नागरी लिपि के वर्णों की यह प्रमुख विशेषता है कि वर्णों के नाम के ही अनुरूप शब्दों में उनका भी उच्चारण होता है, यथा–क–चकोर, त–तमाल आदि।

इस प्रकार नागरी वर्ण–ज्ञान होने पर किसी शब्द का शुद्ध उच्चारण संभव है। रोमन लिपि में यह गुण नहीं है। रोमन के संकेतों की ध्वनियों शब्दों में प्रयुक्त होकर कुछ से कुछ हो जाती है। प्रत्येक लिपि–संकेत के साथ शब्दों में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि को याद करना पड़ता हैं रोमन में इस संदर्भ की अनेकरूपता दिखाई पड़ती है।

(क) अंग्रेजी के कुछ शब्दों के उच्चारण में कुछ लिपि–संकेतों के नाम की मात्र प्रथम ध्वनि का प्रयोग होता है; यथा – B (बी) 'ब'– Bag (बैग), D (डी) 'ड'– Date (डेट), K (के) 'क' Kite (काइट)।

(ख) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि–संकेतों के नाम की दूसरी ध्वनि का प्रयोग किया जाता है; यथा– F (एफ) 'फ' (Fan) , L (एल) 'ल' Lame (लेम), M (एम) 'म' Man (मैन)।

(ग) अंग्रेजी के कुछ शब्दों में लिपि संकेतों के किसी भी ध्वनि का प्रयोग नहीं होता है; यथा– C (सी) 'क' Cat (कैट), (एवं) ह H (हाउस), 'अ' Hour (आवर)।

एक ध्वनि के लिए एक लिपि–संकेत

नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है कि लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए एक संकेत का प्रयोग होता है। रोमन में यह गुण न्यून है। इसमें एक ध्वनि के लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है; यथा–

क	>	K	(के)	–	Kite	काइट	(पतंग)
	<	Ch	(सी एच)	–	Chemistry	कैमेस्ट्रि	(रसायन विज्ञान)
	>	C	(सी)	–	Coat	कोट	(कोट)
	>	Ck	(सी के)	–	Back	बैक	(पीछे)
	>	Que	(क्यू–यू–ई)	–	Cheque	चैक	(हुंडी)
	X	X	(एक्स)	–	Fox	फॉक्स	(लोमड़ी)

इस प्रकार 'फ' के लए F (Fan] Ph (Photo), Gh (Rough) का प्रयोग होता है, तो 'इ' के लिए I (Tin), O (Women), Y (System) आदि संकेत प्रयुक्त होते हैं।

एक लिपि संकेत के लिए एक ध्वनि

एक लिपि–संकेत के लिए एक ध्वनि का होना वैज्ञानिकता है। नागरी लिपि के किसी वर्ण को शब्द के आदि, मध्य अथवा अंत कहीं भी प्रयोग करें, ध्वनि एक ही हाती है। हिंदी में कुछ एक अपवाद मिल सकते हैं, तो रोमन लिपि में

यह कमी बहुत खटती है–

A	(ए)	अ	>	Affirm	(अफ्फर्म)	–	निश्चयपूर्वक कहना
		आ	>	Car	(कार)	–	कार
		ए	>	Rate	(रेट)	–	नियत मूल्य
		ऐ	>	At	(ऐट)	–	पर

इसी प्रकार (यू) का उच्चारण अ (Cut), उ (Put), यू (Unit) आदि रूपों में होता है।

व्यंजन की आक्षरिकता

नागरी लिपि के सभी व्यंजनों के साथ स्वर अ का उच्चारण होता है। यह गुण व्यंजनों की आक्षरिकता कहलाता है। च = च् +अ, त = त् +अ आदि।

इस प्रकार आक्षरिक रूप में लेखन में त्वरा आती है। साथ ही साथ समय तथा स्थान की भी बचत होती है। रोमन लिपि के वर्णों में यह गुण नहीं है, जिसके कारण समय अपेक्षाकृत अधिक लगता है, यथा–कमल KAMALA रमन– RAMANA, छम छम– CHHAMA CHHAMA **मात्रा का प्रयोग**

नागरी लिपि के स्वरों का कभी स्वतंत्र रूप में प्रयोग होता है, तो कभी उनके मात्रा संकेतों का। स्वरों के स्वतंत्र प्रयोग में किसी अन्य लिपि–संकेतों का सहारा नहीं लेना पड़ता है; यथा–अ–अपनी, इ–इधर, उ–उधर आदि।

जब स्वर के स्थान पर उनकी मात्राओं का प्रयोग किया जाता है, तो लेखन का मूलाधार व्यंजन होता है; यथा– आ माता, इ > ि–लिपि, उ > ु कुछ उ ू कुछ, उ > ू मूल आदि।

यदि मात्रा प्रयोग की व्यवस्था न होती तो स्थान एवं समय अधिक लगने से लेखन में त्वरा संभव न होता। ऐसे में लेख का रूप इस प्रकार होता–माता = म् आ त् आ, लिपि = ल् इ प् इ, कुछ + क् उ ु छ् अ्

ऐसी वैज्ञानिकता रोमल लिपि में नहीं है। स्वरों के मात्रा रूप के अभाव होने से उनका स्वतंत्र रूप में ही प्रयोग होता है; यथा– पतन PATANA, कमल KAMALA आदि।

ह्रस्व–दीर्घ स्वरों के लिए स्वतंत्र लिपि–संकेत

वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही विषम स्थिति होती है, यथा –

यह नागरी की प्रमुख वैज्ञानिकता है। रोमन लिपि में यह गुण आंशिक रूप में भी नहीं है। नागरी लिपि में भी नहीं है। नागरी लिपि में स्वर के दो रूप हैं– ह्रस्व तथा दीर्घ; यथा–

ह्रस्व स्वर – आ, इ, उ आदि।

दीर्घ स्वर – आ, ई, उ आदि।

इस प्रकार स्वर के ह्रस्व तथा दीर्घ, दो रूपों से ध्वनियों का अधिक शुद्ध उच्चारण और लिपिबद्ध करना संभव है; यथा –

रम, रमा, रामा।

लत, लता, लात, लाता।

ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर ध्वनियों के दो रूप से उक्त लेखन संभव है, अन्यथा रम, रमा, राम, रामा के लिए एक ही रूप

होता। रोमन में 'अ' तथा 'आ' स्वर ध्वनियों के लिए सामान्यतः 'A' वर्ण का ही प्रयोग होता है, जिसके कारण ऐसी ही विषम स्थिति होती है; यथा –

RAMA = रम, रमा, राम, रामा।

LATA = लत, लता, लात, लाता।

पर्याप्त लिपि–चिह्न

वैज्ञानिक लिपि में संबंधित भाषा की ध्वनियों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त संकेतों का होना आवश्यक होता है। नागरी लिपि की यह प्रमुख विशेषता है। रोमन लिपि द्वारा अंग्रेजी की भी ध्वनियों का लिपिबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। रोमन लिपि में महाप्राण ध्वनियों के लिए स्वतंत्र लिपि संकेत नहीं है। इनको लिपिबद्ध करने के लिए अल्पप्राण ध्वनि के साथ 'H' का प्रयोग किया जाता है; यथा – ख KH, घ GH, ठ TH, फ PH अंग्रेजी में लिपि–संकेतों की अपर्याप्तता के कारण पढ़ने में आने वाली समस्याएँ द्रष्टव्य हैं– AGHAN> अगहन, अघन।

रोमन लिपि की इस कमी के कारण एक ही शब्द में अनेक शब्दों के संदेह की समस्या इसकी वैज्ञानिकता और पुष्ट होती है। इन विशेषताओं को देखते हुए नागरी लिपि के रूप में प्रयोग करना चाहिए, इससे राष्ट्रीय एकता भी सुदृढ़ होगी।

नागरी लिपि का मानकीकरण

देवनागरी लिपि विश्व की अनेक लिपियों से अधिक वैज्ञानिक हैं नागरी को सर्वगुण या पूर्ण लिपि बनाने के लिए इसमें कुछ सुधार आवश्यक हैं। वर्तमान समय में नागरी लिपि की कुछ समस्याएँ हैं, जिनका सुधार अपेक्षित है।

समस्याएँ

एक वर्ण के लिए एक से अधिक संकेत – देवनागरी में कुछ ऐसे वर्ण हैं जिनके लिए एक से अधिक संकेतों का प्रयोग होता है; यथा –

(क) 'र' के लिए चार संकेतों का प्रयोग – र = र, ् ‸ ् ि रमा, क्रम, ट्रक, धर्म।

(ख) एक वर्ण के लिए दो शब्दों का प्रयोग–अ–त्र्प, छ–द्द, झ–भ ल–ल, ण–सा, श–श आदि।

(ग) एक अंग के लिए दो या दो से अधिक संकेतों का प्रयोग।

चार संकेतों का प्रयोग नौ – 9 ....

तीन संकेतों का प्रयोग छः – 6 ....

दो संकेतों का प्रयोग आठ – 8 ....?

दो लिपि–चिह्नों के भ्रामक प्रयोग – ख–रव, घ–ध, भ–म, रा (र+आ)– रा (आधा रा)। यह शिरोरेखा विहीन लेखन या त्वरित लेखन में होती है।

संयुक्त वर्णों का प्रयोग – क्ष, त्र, ज्ञ, द्य, द्ध, क्त, झ आदि।

लिपि–संकेतों की अपर्याप्तता– ख, ग, ज, फ आदि का प्रभाव।

'इ' की मात्रा के प्रयोग की समस्या।

व्यंजनों की आक्षरिकता सभी मूल व्यंजनों में आकार का होना।

शिरोरेखा और पूर्ण विराम–चिह्नों का प्रयोग–विवाद।

समाधान या सुधार–सिद्धान्त

लिपि––सुधार के समय उससे सम्बन्धित मूलभूत सिद्धांतों पर विचार करना आवश्यक है; जो अग्रलिखित हैं –

आवश्यकतानुसार कम से कम परिवर्तन,

एक ध्वनि के लिए एक संकेत–प्रयोग,

एक लिपि–संकेत के लिए एक ध्वनि–प्रयोग

लिपि संकेतों की पर्याप्तता,

लेखन एकरूपता,

लिपि में त्वरित लेखन–गुण

उच्चारणनुसार लेखन,

लेखन–सरलता,

लेखन, टंकण और मुद्रण में एकरूपता।

सुधार–इतिहास

मानव का सम्पर्क दिन–प्रतिदिन देश से विदेश की ओर बढ़ता जा रहा है। देवनागरी को पूर्ण वैज्ञानिक लिपि बनाने के लिए इस शताब्दी में कुछ व्यक्तियों, संस्थाओं और राज्यों एवं केन्द्र सरकारों द्वारा लगातार प्रयत्न किए गए हैं। इस संदर्भ में किए गए कुछ प्रयास इस प्रकार हैं –

(क) प्रारंभिक सुधार – नागरी लिपि के प्रथम सुधारकर्ता के रूप में बम्बई के महादेव गोविन्द रानाडे का नाम लिया जाता है। इसके पश्चात् महाराष्ट्र साहित्य परिषद्, पुणे के द्वारा एक लिपि–सुधार समिति नियुक्त की गई। मराठी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में इस संदर्भ का प्रस्ताव पास किया गया। सावरकर ने 'अ' को मूल स्वर मानकर इसी से अन्य स्वरों की कल्पना की थी; यथा – इ अि, ई अी, उ अु, ऊ अू, ए अे आदि। इस संदर्भ में महात्मा गांधी, विनोबा भावे कालेलकर आदि ने सराहनीय कार्य किया है। इस सुधार–प्रयास को पूर्ण स्वीकृति न मिल सकी। इसका मुख्य कारण था– एक अनुतरित प्रश्न कि ये मात्राएँ जो 'अ' में लगाकर इ, उ आदि बनती हैं, वे इ, उ आदि के अस्तित्व के बिना आई कहाँ से?

नागरी लिपि–संकेतों से शिरोरेखा हटाने का भी सुझाव दिया गया है। उसी समय से गुजराती लिपि से शिरारेखाविहीन लेखन की परंपरा चली आ रही है। इस समय लिप–सुधार संदर्भ में कार्य करने वाले अन्य विद्वान थे–केशवराम, काशीप्रसाद शास्त्री, गोरख प्रसाद और श्रीनिवास आदि।

(ख) हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयास के तत्वाधान में 1935 में महात्मा गांधी के सभापतित्व में हुए अधिवेशन में एक नागरी लिपि सुधार–समिति का गठन किया गया है, जिसकी बैठक 5 अक्तूबर, 1941 को हुई। इसमें निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए गए –

1. शिरोरेखा लगाना आवश्यक नहीं है।
2. प्रत्येक वर्ण तथा मात्रा उच्चारण क्रम में लिखे; यथा–चुप > च ु प, मेल > म े ल आदि।
3. 'इ' की मात्रा 'ि के भ्रामक प्रयोग से बचने के लिए 'इ' और 'ई' की मात्राओं में परिवर्तन करके मात्र ि के नीचे भाग को बाएँ और ई की मात्रा ी के नीचे के भाग को दाएँ भुजाएँ।

4. पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई का प्रयोग करें।
5. अनुस्वार तथा अनुनासिक संकेतों का प्रयोग उच्चारण–क्रम में दाहिनी ओर हटकर करें; यथा–चंद > च ं द, चाँद > चा ँ द।
6. घ–ध और भ–म की भ्रामक स्थिति समाप्त करने के लिए ध और भ को घुण्डीदार बनाएँ; यथा– ध, भ।
7. प्रेम, क्रीम त्रुटि आदि संयुक्त वर्गों में स्वतंत्र 'र' का प्रयोग करें; यथा– प्रेम > प्रेम, क्रीम > क्रीम, त्रुटि > त्रुटि आदि।

(ग) नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा 1995 में अनेक विद्वानों से नागरी–सुधार संबंध में सुझाव मांगा गया। श्रीनिवास ने समिति के सामने 'प्रति देवनागरी' नया नाम रखते हुए इस संदर्भ में कुछ सुझाव दिए जिनकी कुछ विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. वर्णों की संख्या कम करने के लिए एक वर्ण को परिवर्तित कर दूसरे वर्ण बनाए गए।
2. सभी स्वर 'अ' के आधार पर बनाए गए थे।
3. सुधार–प्रयत्न से वर्ण–संकेत में बहुत अधिक नवीनता आ गई थी।

   बहुत अधिक नवीनता हो जाने से इन सुधारों को महत्व न मिला।

(घ) उत्तर प्रदेश सरकार (प्रथम प्रयास)– 31 जुलाई, 1947 को उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में 'नागरी सुधार समिति' का गठन किया। इस समिति के द्वारा कई सुझाव दिए गए–

1. शिरोरेखा का प्रयोग हो।
2. जिन व्यंजनों के उत्तरार्द्ध में खड़ी पाई न हो उनसे संयुक्त रूप बनाते समय उसमें हलंत का प्रयोग करें; यथा – गड्ढा, गद्दी।
3. 'इ' की मात्रा को वर्ण के दाहिने लगाएँ किंतु लम्बाई आधी कर दें, यथा – मिलन > मीलन, तिल > तील आदि।
4. घ–ध और भ–म के भ्रम को दूर करने के लिए धर और भ का घुण्डीदार = 'ध', 'भ' प्रयोग करें।
5. पूर्णविराम को खड़ी पाई के रूप में प्रयोग करें।
6. अनुस्वार के लिए शून्य (0) और अनुनासिक के लिए बिन्दु (.) का प्रयोग होना चाहिए।
7. संयुक्त वर्णों (क्ष, त्र, ज्ञ आदि) को यथासाध्य निकाल देना चाहिए।

(ङ) उत्तर प्रदेश सरकार (द्वितीय प्रयास) : नागरी प्रचारिणी सभा के अनुरोध पर उत्तर प्रदेश सरकार ने एक 'लिपि सुधार–परिषद्' का गठन किया। 28, 29 नवंबर, 1953 को देश के उपराष्ट्रपति डॉ0 राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में परिषद् की बैठक हुई, जिसमें चौदह प्रांतों के मुख्यमंत्रियों और उनके भाषा शास्त्रियों ने भाग लिया। इस समिति के सर्वसम्मति से स्वीकृति सुझा इस प्रकार थे –

1. ध और भ के समान छ को भी घुण्डीदार 'छ' बनाएँ।
2. संयुक्त वर्णों को स्वतंत्र वर्णों के माध्यम से लिखे (मात्र क्ष के पूर्ववत् प्रयोग पर बल दिया गया)। अन्य सुधारों के संबंध में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में दिए गए सुझावों की सराहना की गई।

(च) इनके अतिरिक्त पंजाब हिन्दु महासभा, दक्षिण हिंदी–प्रचार सभा, मद्रास : राष्ट्र–भाषा प्रचार समिति, वर्धा; बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना तथा हिंदी प्रचार परिषद्, बंगलौर आदि के द्वारा भी नागरी–सुधार के संबंध में प्रयत्न किये गए, जो पूर्ववर्णित सुधारों के समान हैं।

(छ) नागरी–सुधार के प्रयास संदर्भ में आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों – डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, डॉ0 उदयनारायण तिवारी, डॉ0 भोलानाथ तिवारी, डॉ0 कैलाशचन्द्र भाटिया, डॉ0 हरदेव बाहरी और डॉ0 शंकर द्विवेदी की सराहनीय भूमिका रही है।

देवनागरी सुधार–विवेचन

देवनागरी लिपि के समस्त सुधारों को समवेत रूप में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं –

1. समय–स्थान की बचत के साथ त्वरा–लेखन के लिए स्वर–मात्राओं का पूर्ववत प्रयोग करें। परम्परागत प्रयोग की समानता को देखते हुए 'इ' की मात्रा 'ि का पूर्ववत प्रयोग करें।
2. 'र' के लिए प्रचलित चार रूपों (र) के स्थान पर एक स्वतंत्र संकेत का ही प्रयोग करें; यथा– राम, क्रम > क्रम, ड्रम > ड्रम, मर्म > मर्म।
3. एक वर्ण के लिए प्रयुक्त होने वाले दो संकेतों के स्थान पर केवल एक संकेत निर्धारित हो; यथा– अ, झ, ण, ल और श आदि।

   इसी प्रकार स्पष्टता, सरलता और बहुप्रचलन के आधार पर अ, झ, ण, ल, श का ही प्रयोग वैज्ञानिक है।
4. दो वर्णों के लगभग समान संकेतों से भ्रामक स्थिति उत्पन्न होती है; यथा– ख > रव, (खाना > रवाना), घ > ध (घाम > धाम), रा (आधा ण) > (अराडा > अराड़ा)

   इस समस्या के हल हेतु सम्बन्धित वर्णों में इस प्रकार परिवर्तन करें –

   (ख > ख, घ > ध, भ > भ और 'राा' के स्थान पर 'ण' का ही प्रयोग करें)।
5. संयुक्त वर्णों के स्थान पर स्वतंत्र ध्वनियों का प्रयोग करें, यथा– क्ष > क्ष, त्र > त्र, ज्ञ > ज्ञ् श्र > श्र, क्त > क्त आदि।
6. नागरी लिपि में क, ख, ग, ज, फ ध्वनि चिह्न पहले से ही विद्यमान हैं। इनमें ही संघर्षी चिह्न लगाकर अरबी–फारसी की क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ध्वनियों का लेखन कर सकते हैं। इससे स्पष्ट भावाभिव्यक्ति के साथ नागरी लिपि पर अतिरिक्त लिपि–चिह्नों का बोझ नहीं आएगा।
7. अंग्रेजी की 'ऑ' ध्वनि का हिंदी में प्रयोग होने लगा है; यथा– डॉक्टर, कॉलेज, बॉल आदि। इसे अपना लेना चाहिए और इसे 'चन्द्रांक कह सकते हैं।
8. पूर्णविराम के स्थान पर '।' का ही प्रयोग करना चाहिए।
9. अनुनासिक तथा अनुस्वार के शुद्ध उच्चारण और लेखन को स्पष्ट रूप देने हेतु अनुनासिक (ँ) रूप में और अनुस्वार पूर्ववत् (.) प्रयोग करना चाहिए, यथा–चाँद, चंद।
10. नागरी के प्रत्येक अंक के लिए एक चिह्न का प्रयोग करना चाहिए नागरी के नौ अंक के लिए चार संकेतों, छह के लिए तीन और आठ के लिए दो संकेतों के प्रयोग मिलते हैं। इनमें सरलता बहुप्रयुक्त चिह्न रूप ही (1, 8, 6) अपनाना चाहिए।

अध्याय –5

हिंदी कंप्यूटिंग

कंप्यूटर परिचय एवं महत्ता

वर्तमान में हम सूचना विस्फोट के युग में गतिशील हैं। इन्टरनेट (विश्वजाल) ने विस्तीर्ण संसार को विश्वगाँव (Global Village) में बदल दिया है। सूचना प्रौद्योगिकी को सर्वाधिक गति कंप्यूटर से मिलती है। कंप्यूटर के विकास में लगभग पाँच दशक का समय अवश्य लगा है, किंतु आज कंप्यूटर जनसामान्य के लिए भी विशेष उपयोगी बन गया है। इसका उपयोग मानव द्वारा सभी क्षेत्रों में किया जाने लगा है। कंप्यूटर का उद्‌भव अंग्रेजी भाषा क्षेत्र में हुआ। इसलिए इसमें सर्वप्रथम अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि का प्रयोग किया गया। धीरे–धीरे विभिन्न भाषाओं और विविध लिपियों का प्रयोग कंप्यूटर में किया जाने लगा है।

वर्तमान समय में व्याकरण के सुदृढ़ आधार से अनुशासित संस्कृत कंप्यूटर की सर्वाधिक उपयोगी भाषा है। संस्कृत भाषा की लिपि नागरी है। इसे देवनागरी नाम भी दिया जाता है। देवनागरी में संस्कृत के अतिरिक्त वैदिक, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, राजस्थानी और नेपाली आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं। नागरी लिपि वैज्ञानिक लिपि है। इस प्रकार नागरी लिपि में कंप्यूटर पर कार्य करना सरल है। नागरी लिपि के सॉफ्टवेयर पर्याप्त रूप में उपलबध है। कंप्यूटर पर हिंदी भाषा का उपयोग अनुकूल गति से होने लगा है।

5.1 आँकड़ा संसाधन (Data Processing or Word Processing)

कंप्यूटर में आँकड़ा (Data) कुंजीपटल के द्वारा भरा जाता हैं आँकड़ा, शब्द या अंक किसी भी रूप में हो सकता है। ध्यान से देखें तो दो भाग सामने होंगे– प्रथम, मॉनिटर या स्क्रीन जिस पर आँकड़ा शब्द और अंक देख सकते हैं। द्वितीय सी.पी.यू. (Central Processing Unit) एक बॉक्स के रूप में होता है। इसमें एक मदर बोर्ड होता है जिसमें मूंगफली के आकार का छोटा–सा सिलिकॉन चिप में संसाधक या प्रोफेसर रहता है। आँकड़ा संसाधक को मुख्यतः तीन विषयों में विभक्त कर सकते हैं –

(अ) हार्डवेयर विकल्प (Hardware Option)

आँकड़ा संसाधन से संबंति कार्य हिंदी भाषा में करने हेतु दो विकल्प सीाव हैं– प्रथम हार्डवेयर विकल्प, द्वितीय–सॉफ्टवेयर विकल्प। आँकड़ा संसाधन संबंधित हार्डवेयर के विकास में आई. आई. टी., कानपुर विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सॉफ्टवेयर की इस प्रणाली को जिस्ट प्रौद्योगिकी (Graphics and Intelligence based script Technology) नाम दिया गया है। इस प्रणाली को अपनाकर भारत सरकार का 'सी–डेक' सोसायटी ने 'परम' नाम सुपर कंप्यूटर का विकास किया। यह सोसायटी 'सी–डेक' (Centre for Development of Advanced Computering) महाराष्ट्र प्रदेश के पुणे में स्थित है। जिस्ट प्रौद्योगिकी में पर्सनल कंप्यूटर के 'मदर बोर्ड' पर एक 'प्लग इन कार्ड' लगाया जाता है। इसे ही 'जिस्ट कार्ड' कहते हैं। इस जिस्ट कार्ड की सहायता से आई.बी.एम. के पर्सनल कंप्यूटरों पर द्विभाषित और बहुभाषित रूप में आँकड़ा संसाधन संभव है। यूनिक्स/जेनिक्स परिचालन पद्धतियों के लिए जिस्ट कार्ड के स्थान पर 'जिस्ट–टर्मिनल' की अपेक्षा होती है। 'जिस्ट प्रौद्योगिकी' के माध्यम से हिंदी और विभिन्न भाषाओं का प्रयोग संभव है।

(ब) सॉफ्टवेयर विकल्प (Software Option)

आँकड़ा संसाधन का सॉफ्टवेयर विकल्प 'फ्लॉपी डिस्क' के रूप में प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके लिए कंप्यूटर में किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता नहीं होती है। फ्लॉपी डिस्क के रूप में उपलब्ध पैकेज को दो रूपों में विभक्त कर सकते हैं –

1. समर्पित सॉफ्टवेयर प्रोग्राम (Dedicated Software Programme) यह हिंदी में आँकड़ा संसाधन का एक महत्वपूर्ण सॉफ्टवेयर है– बेस (द्विभाषी डाटाबेस प्रबन्धन प्रणाली)। इस सॉफ्टवेयर का निर्माण दिल्ली की में, सॉफ्टेक प्राईवेट लिमिटेड द्वारा किया गया है। यह सॉफ्टवेयर 'डी–बेस' III प्लस का द्विभाषी संस्करण ही है। हिंदी में काम करने के लिए यह एक उपयोगी पैकेज है। इसमें अभी और संसोधन कर अनुकूल दिशा पाने की आवश्यकता है।

2. सामान्य उद्देश्यीय सॉफ्टवेयर परिवेश (General Purpose Software) –आँकड़ा संसाधन का ऐसा परिवेश है जिसमें रोमन के अनेक सॉफ्टवेयर पैकेज हैं, यथा– 'डी–बेस', लोटस, क्लिपर और सॉफ्टवेयर आदि। इन पैकेजों पर हिंदी में काम किया जा सकता है। इस परिवेश के विभिन्न प्रोग्रामिंग पर भी हिंदी में कार्य करना संभव है। यह परिवेश सामान्यतः जिस्ट के ही समान है अर्थात् जिन कार्यों को जिस्ट कर सकते हैं, उनको परिवेश के आधार पर सम्पन्न कर सकते हैं। नई दिल्ली के आर. के. कंप्यूटर रिसर्च फाउंडेशन द्वारा निर्मित 'सुलिपि' नामक सॉफ्टवेयर जिस्ट के ही समकक्ष उद्देशीय सॉफ्टवेयर है। इसके आधार पर एम.एस. डॉस पर आधारित पर्सनल कंप्यूटरों पर सभी कार्य हिंदी और अंग्रेजी में साथ–साथ किए जा सकते हैं।

   जिस्ट और सुलिपि के अन्तर्गत विभिन्न भारतीय भाषाओं के परस्पर लिप्यंतरण की उत्तम सुविधा है। जिस्ट और सुलिपि में मुख्य अंतर यह है कि जिस्ट के माध्यम से एम. एस. डॉस और यूनिक्स/जेनिक्स परिवेश में भी हिंदी कार्य करना संभव होता है, तो सुलिपि में एल.ए.एल (Local Area Network) परिवेश में हिंदी–कार्य करना संभव होता है।

शब्द–संसाधन (Word Processing)

भाषिक अनुप्रयोग में शब्द–संसाधन प्रारंभिक चरण है। अंग्रेजी भाषा क्षेत्र में कंप्यूटर के उद्‌भव के कारण प्रारंभिक शब्द–संसाधन अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि में हुआ। हिंदी पाठों के प्रारंभिक शब्द–संसाधन रोमन लिपि के माध्यम से कुजीपटन किया गया। कंप्यूटर के संदर्भ में हिंदी का प्रारंभिक अनुप्रयोग शब्द–संसाधन से हुआ। वर्तमान समय में हिन्दी के अनेक पैकेज देश–विदेश में विकसित हो चुके हैं। हिंदी के साथ द्विभाषित या बहुभाषिक रूप उपलब्ध हैं। विभिन्न भारतीय के माध्यम से शब्द–संसाधन के कार्य चल रहे हैं। वर्तमान समय में कुछ पैकेज हैं– अक्षर, मल्टीवर्ड, शब्दरत्न, भारती, आलोख, शब्दमाला आदि। हिंदी के इन पैकेजों में वे विभिनन सुविधाएँ उपलब्ध हैं, तो वर्डस्टार, वर्डपरफेक्ट आदि प्रोसेसिंग पैकेजों में उपलब्ध हैं। यह कहना नितांत आवश्यक है कि मात्र शब्द–संसाधन से कंप्यूटर के समस्त भाषायी अनुप्रयोग संभव नहीं है। वर्तमान समय में हिंदी के भाषिक अनुप्रयोग को आदर्श रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्न चल रहे हैं। आँकड़ा संसाधन की सफलता के लिए वर्तमान स्थिति में अंग्रेजी–हिंदी द्विभाषी रूपों को अपनाया जा रहा है।

(स) हिंदी भाषा–शिक्षण

वर्तमान वैज्ञानिक युग में शिक्षा को वैज्ञानिक पद्धति से जोड़ने और सुरूचिपूर्ण बनाने की बात सामने आई। कंप्यूटर युग में कम से कम समय में उपयोगी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। आज जब दृश्य–श्रव्य उपकरणों से अधिकांश कार्य संपन्न होने लगे, तो शिक्षा को भी इससे जोड़ने और रूचिकर बनाने का प्रयत्न शुरू हुआ। विभिन्न क्षेत्रों के विद्यार्थियों को शिक्षित करने के लिए श्रव्य–दृश्य कैसेट और वीडियो बनाना संभव नहीं। इसके साथ ही

कंप्यूटर से शिक्षा देने का प्रश्न सामने आया। आज कंप्यूटर का प्रचार बहुत तेजी से हो रहा है। हिंदी–शिखण के लिए कंप्यूटर प्रयोग की योजना बनाई गई।

कंप्यूटर से भाषा–शिक्षण के लिए संलेखन प्रणाली (Authorising System) की आवश्यकता होती ह। इसके तीन पक्षों में प्रथम–उपयोगिता क्रमादेश प्रणाली, द्वितीय–संलेखन भाषाएँ और तृतीय क्रमादेश। इनके आधार पर अभ्यास के लए पाठ बनाए तथा अभ्यास कराए जाते हैं।

भारत में सुपर कंप्यूटर के निर्माता 'सी–डेक' ने कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी–शिक्षण के लिए बहुआयामी सॉफ्टवेयर पैकेज विकसित किया है। इस पैकेज के माध्यम से हिंदी तथा वाक्य–संरचना के साथ प्रमाणिक उच्चारण और चित्रों के माध्यम से शुद्ध उच्चारण और शुद्ध लेखन भी संभव हो रहा है। पर पैकेज उन लोगों के लिए विशेष उपयोगी है जो हिंदी भाषी नहीं हैं। आजकल विदेश में इसकी विशेष मांग है। विदेश में रहने वाले और भारतीय संस्कृति और भाषा से जुड़े लोगों के लिए विशेष उपयोगी है। इन पाठों को रोचक कथ्य और अभ्यासों के माध्यम से विकसित किया गया है।

वर्तमान समय में भारत के स्कूलों में कंप्यूटर के माध्यम से हिन्दी–शिक्षा 'CLASS' कार्यक्रम के अन्तर्गत शुरू किया गया है। यह इंग्लैण्ड की भेंट स्वरूप होने के कारण प्रारंभ में इसके सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर अंग्रेजी उपयोग के लिए थे। बाद में सी.एम.सी. लिमिटेड ने बी.बी.सी. माइक्रो नामक इस कंप्यूटर में आवश्यक परिवर्तन करके 'प्रश्कोश' आदि अनेक सॉफ्टवेयर हिंदी में विकसित कर लिए। कंप्यूटर पर हिंदी–शिक्षण संदर्भ में आई.आई.टी. मद्रास का कार्य विशेष उल्लेख्नीय है। वहाँ के शुक्ला दंपत्ति ने ऐसी प्रणाली विकसित की है कि हिंदी के माध्यम से सभी विषयों का शिक्षण दिया जा सकता है। माउस द्वारा सभी प्रकार के रेखाचित्र खींचे जा सकते हैं। स्कैनर द्वारा चित्रों को स्मृतिकोश में सुरक्षित किया जा सकता है। हिंदी भाषा–शिक्षण हेतु दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा ने आई. आई. टी., मद्रास के सहयोग से एक उपयोगी योजना तैयार की है। भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर और हिंदी संस्थान, आगरा के द्वारा बी.बी.सी. माइक्रो पर हिंदी और भारतीय भाषाओं के शिक्षा हेतु विदेश माइक्रोसॉफ्ट तैयार किया गया है।

निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में कंप्यूटर के माध्यम से हिंदी–शिक्षण का उपयोगी रूप सामने आ जाएगा।

5.2 वर्तनी–शोधन

कंप्यूटर वर्तमान युग में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाला विशेष उपयोगी यंत्र है। इसका बहुआयामी प्रयोग होता है। भाषिक अनुप्रयोग के संदर्भ में कंप्यूटर की उपयोगिता अनिवार्य होती जा रही है। जिस प्रकार एक विद्यार्थी कुछ लिखता है, तो उसमें गलतियों की संभावना होती है। भाषा की गलतियाँ मुख्यतः दो प्रकार की होती हैं– प्रथम वर्तनी की गलती, द्वितीय–व्याकरण की अशुद्धि। शिक्षण इन गलतियों को संशोधित कर देता है। इसी प्रकार हम जब कुंजीपटल के माध्यम से आँकड़ा संसाधन करते हैं, अर्थात् जब कुंजीपटल के माध्यम से विषय–वस्तु को कंप्यूटर में टाइप करते हैं तो मॉनीटर उपर से पढ़ा जा सकता है। आँकड़ा या विषय वस्तु मॉनिटर या स्क्रीन के माध्यम से दृश्य होता है।

कुंजीपटल के प्रयोग स्ट्रोक के साथ शब्द–संरचना हेतु वर्ण की मात्राओं के चिह्न उभरते रहते हैं। शब्द की संरचना पूरी होती है। कंप्यूटर उसकी शुद्धता का निर्णय प्रकट कर देता है। यदि शब्द वर्तनी की दृष्टि से शुद्ध होगा, तब कोई संकेत नहीं होता। वर्तनी की अशुद्धि होने पर शब्द के नीचे लहरदार लाल लाईन उभर आती है, यथा–कंप्यूटर को आधुनिक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। ''वाक्य–रचना के समय रेखा का अर्थ है कि कंप्यूटर को आधुनिक 'सधन' लिखते ही 'सधन' के नीचे वर्तनी अशुद्धि के लिए लाल लहरदार रेखा उभर आएगी।

इस संकेत रेखा का अर्थ है कि कंप्यूटर के मस्तिष्क (मेमोरी) में ऐसा कोई शब्द है ही नहीं। जिस प्रकार एक विद्यार्थी कोई शब्द लिखता है और शब्द की वर्तनी संदिग्ध होने पर शब्दकोश का सहारा लेता है। यदि शब्दकोश में वह शब्द हो ही नहीं, तो वह अपने लिखे शब्द को अशुद्ध मान लेता है। इसके बाद संशोधन करता है।

कंप्यूटर के मस्तिष्क में एक शब्दकोश सुरक्षित कर दिया जाता है। उसी के माध्यम से कंप्यूटर शब्द–संशोधन के समय ही उसकी वर्तनी की शुद्धता का परीक्षण कर त्वरित निर्देश करता रहता हैं कंप्यूटर का प्रारंभिक प्रयोग अंग्रेजी भाषा क्षेत्र में हुआ हैं इसलिए अंग्रेजी में वर्तनी, संशोधन की प्रक्रिया पर्याप्त समय पहले से है, किन्तु हिन्दी में भी वर्तनी–संशोधन की प्रक्रिया लोकप्रिय हो गई है।

जब वाक्य के शब्द के अशुद्ध होने का संकेत किया जाता है उसकी वर्तनी संशोधन के लिए सर्वप्रथम टूल्स (Tools) पर क्लिक करते हैं, तो कई पद्धतियों के विवरण–संकेत सामने आते हैं। इनमें से 'वर्तनी और व्याकरण' पर क्लिक करते हैं तो वर्तनी–संशोधन के लिए तीन या चार शुद्ध विकल्प सामने आ जाते हैं। वाक्य के भावानुकूल शब्द का चयन कर उस पर क्लिक करते ही अशुद्ध शब्द स्वयंमेव शुद्ध हो जाता है। यथा–पूर्व वाक्य था– ''कंप्यूटर का आधुनिक साधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।'' जब सध्न को शुद्ध करने के लिए टूल्स पर क्लिक कर वर्तनी और व्याकरण पर क्लिक करते हैं तो तीन/चार शुद्ध शब्द आते हैं।

साधन
साधनता
साधना

इसके पश्चात् 'साधन' पर क्लिक करते हैं। वाक्य का शब्द 'सध्न' संशोधित होकर 'साधन' बन जाता है। वर्तनी शुद्ध करने का दूसरा तरीका है कि यदि शब्द गलत शटद पर माउस के दाहिने ओर से उस पर क्लिक करें, तो गलत शब्द के लिए शुद्ध शब्दों के पूर्ववत् तीन/चार विकल्प सामने आ जाएंगे। इनमें से भावानुसार चयन कर उस पर क्लिक करने से वाक्य का अशुद्ध रूप शुद्ध हो जाता है। भाषिक अनुप्रयोग में वर्तनी संशोधन का विशेष महत्व है। इसके द्वारा एक हिंदी भाषा के मानक रूप में प्रयोग को सबल आधार मिलता है, वहीं दूसरी ओर हिंदी भाषा–शिक्षण का उत्कृष्ट अवसर मिलता है।

निश्चय ही भाषा–प्रयोग और भाषा–शिक्षण में जो भूमिका शब्दकोश और शिक्षण की होती है, वहीं भूमिका कंप्यूटर आधारित वर्तनी–संशोधन की है।

5.3 मशीनी अनुवाद

वर्तमान वैज्ञानिक युग में मानव नए–नए संदर्भों से सुपरिचित होना चाहता है। प्रौद्योगिकी क्रांति के साथ मशीनी अनुवाद की अपेक्षा हुई है। आज नए–नए ज्ञान–विाान की जानकारी के लिए त्वरित अनुवाद की अपेक्षा है। यह सुस्पष्ट मान्यता है कि मानव द्वारा निर्मित कंप्यूटर मानव से कहीं त्वरित कार्य कर सकता है। अनुवाद के संदर्भ में अभी यह गुणवत्ता और विश्वसनीयता नहीं है। अनुवाद कार्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है, प्रथम, जहाँ पर सूचनात्मक, विवरणात्मक तथ्यों की बात है, वह कंप्यूटर पूर्ण त्वरित और सफलता से कर लेता है और इसे कंप्यूटर से सम्पन्न करना चाहिए। द्वितीय, गुणवत्तापूर्ण अनुवाद–कार्य व्यक्तिगत रूप में सम्पन्न करना संभव है। वर्तमान समय में अनुवाद–कार्य का यह विभाजन उपयोगी होगा।

मशीनी अनुवाद वास्तव में अन्तरविद्यावर्ती विषय है। इसका प्रथम और प्रमुख भाग भाषा–विश्लेषण, द्वितीय या बहुभाषी कोश–निर्माण एवं भाषा–आधार पर विश्लेषण और मूल्यांकन करना है। दूसरी ओर कंप्यूटर विशेषज्ञों द्वारा कंप्यूटर के आपेक्षिक कार्यक्रमों के द्वारा अनुवाद की विभिन्न प्रक्रियाओं दोनों भाषाओं के व्याकरणिक सांस्कृतिक

नियमों के आधार पर अनुवाद कार्य सम्पन्न करने के लिए सॉफ्टवेयर विकसित करना है।

मशीनी अनुवाद का अर्थ है कि अनुवाद का कार्य कंप्यूटर सम्पन्न करता है। जिस प्रकार अनुवादक क्रमशः विश्लेषण, अंतरण और समायोजन करता है, उसी प्रकार कंप्यूटर को भी इन तीनों आधारों से गुजरना होता हैं अनुवादक स्त्रोत भाषा के पाठ को पढ़ाता है, उसका विश्लेषण कर तथ्य ग्रहण करता है। कोष–आधार पर लक्ष्य भाषा में अंतरण करता है। इस प्रक्रिया में लक्ष्य–भाषा की संरचना और सांस्कृतिक आाारों पर समायोजन किया जाता है। कंप्यूटर में ये प्रक्रिया विशेष सॉफ्टवेयर के माध्यम से की जाती है। विश्लेषण से संबंधित प्रक्रिया–सामग्री को 'पार्सर' तथा समायोजन संबंधी प्रक्रिया को 'जेननेटर' नाम दिये जाते हैं।

मशीनी अनुवाद का उद्‌भव और विकास

मशीनी अनुवाद का प्रारंभ बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक से मान सकते हैं। वैसे इसका प्रारंभ सन् 1993 से हो चुका था। इस समय अनुवाद को कोड ब्रेकिंग के रूप में स्वीकार किया गया था। इस समय द्विभाषी शब्दकोशों का महत्व दिया गया है। इससे द्विभाषी कोशों में प्रवृष्टियों का अवसर मिला। मशीनी अनुवाद की वास्तविक शुरूआत वारेन टीचर के 1947 के आलेख ऑन ट्रांसलेशन को माना जा सकता है। इसी समय टाउन विश्वविद्यालय में मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया शुरू की गई। शुरू में रूसी–अंग्रेजी अनुवाद सिस्ट्रान (SYSTRAN) तंत्र से अपनाया गया। इसके अंतरिकक्ष विज्ञान की महत्वपूर्ण जानकारियों को अनुवाद के साथ महत्वपूर्ण गुणवत्ता को अपनाने का प्रयत्न किया गया। इसी समय उच्च गुणवत्ता अनुवाद तंत्र (General Purpose High Quality Machine Translation) अमेरिका की ALPAC समिति के द्वारा 1964 से दो वर्ष तक मशीनी अनुवाद पर कार्य करते हुए इस कठिन कार्य को सम्पन्न करने के लए विश्लेषण सिद्धांत विकसित करने पर बल दिया गया। इसके आधार पर अमेरिका और अन्य देशों में भाषा–विश्लेषकों (Language Parsers) का विकास किया गया।

मशीनी अनुवाद में क्रांतिकारी रूप 1976 में आया जब कनाडा प्रसारण सेवा द्वारा TAUMMETEO अनुवाद तंत्र का विकास किया गया। इसके साथ यूरोपिय भाषाओं के अनुवाद हेतु 'सिस्ट्रन' अनुवाद तंत्र विकसित किया गया। इस प्रकार ARIANE, METAL, SUSY और MU अनुवाद तंत्र विकसित किए गए।

इस समय तक अनुवाद में भाषाविदों को महत्व नहीं दिया जाता था। अनुवादकों का उपयोग केवल 'इनपुट' के पूर्व संपादन और 'आउटपुट' के बाद 'पश्च संपादन' में किया जाता था। भाषा–संसाधन के मशीनी अनुवाद हेतु कापलान और ब्रेसनिन का लैक्सीकल फंक्शनल ग्रामर (LFG) का सिद्धांत 'पार्सर' निर्माण हेतु 1979 ई0 में सामने आया। इसी आधार पर के.बी.एम.टी. (KBMT) अनुवाद तंत्र अमेरिका के कार्नेजी मेलन विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किया गया। कंप्यूटर भाषा–विश्लेषण सिद्धांत विकसित हुए। इसी आधार पर पार्सर निर्माण हेतु कंप्यूटर भाषा–विश्लेषक सिद्धांतों में 'ट्री एडज्वाइनिंग ग्रामर' (टी.ए.जी.) डेफिनिट क्लाज ग्रामर (डी.सी.जी.) सामने आए हैं।

मशीनी अनुवाद के भेद

मशीनी अनुवाद–मशनी अनुवाद का प्रारंभिक रूप शाब्दिक अनुवाद है। इसे WORD EXPERT नाम दिया जाता है। इस प्रक्रिया में स्त्रोतभाषा के वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों को लक्ष्यभाषा के भावानुकूल बदला जाता है। इसके साथ लक्ष्यभाषा के अनुरूप वाक्य को पुनः नियोजित किया जाता है। इसे SYSTRAN तकनीक के अंतर्गत माना गया है।

संरचनात्मक अंतरण– इस अनुवाद में सर्वप्रथम स्त्रोत–भाषा के वाक्य का संरचनात्मक विश्लेषण करने के पश्चात् लक्ष्यभाषा के अनुरूप वाक्य संरचनात्मक किया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1976 में विकसित मशीनी अनुवाद इसी तंत्र पर विकसित किया गया। यूरोपिय समुदाय की भाषाओं का EUROTRA में इसी तकनीक को

अपनाया जाता हैं इस प्रक्रिया में विश्लेषण, अंतरण और विश्लेषण–क्रम को अपनाया जाता है।

आर्थी आधारित भाषा–संरचना– इसके अन्तर्गत स्त्रोत–भाषा की संरचना करके विश्लेषण करने के बाद उसमें निहित अर्थ को लक्ष्य–भाषा की संरचना में प्रजनन (Generation) किया जाता है। जापानी मशीनी अनुवाद तंत्र इसी आधार पर विकसित किया गया है। जापानी तंत्र MU और PIVT में इसी प्रकार के पार्सर तैयार किये गये हैं। 1989 में अमेरिका में विकसित के.बी.एम.टी. (KBMT) मशीनी अनुवाद तंत्र इसी तकनीक पर आधारित है।

भारत में मशीनी अनुवाद–भारत वर्ष में कंप्यूटर आधारित अनुवाद बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक से प्रारंभ हुआ है। प्रकृति भाषा संसाधन (Natrual Language Processing) की दिषा में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च TIFR और अब (NCST) मुम्बई में आर. चन्द्रशेखर का प्रयास उल्लेखनीय है।

सूचना प्रौद्योगिकी विभाग के द्वारा भारतीय भाषाओं में प्रौद्योगिक विकास योजना बनाई गई। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर में 'अक्षर भारती' में भारतीय भाषाओं के परस्पर अनुवाद का प्रयास शुरू किया गया। इसी क्रम में हैदराबाद विश्वविद्यालय में प्राकृत भाषा संसाधन में तेलगु, पंजाबी, मराठी आदि भाषाओं से हिंदी में अनुसारकों के विकास की योजना बनाई गई। अब ये अनुसारक प्रौद्योगिक विभाग के 'सर्वर' पर उपलब्ध हैं।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद की दिशा में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर के द्वारा 'आंग्लभारती' और 'अनुभारती प्रविधियों' के द्वारा मशीनी अनुवाद शुरू किया गया। यही से 1992 ई0 में कारपोर उदाहरण आधारित मशीनी अनुवाद तंत्र विकसित करने की योजना बनी। 1999 ई0 में एलिटेक्स (ELITEX) प्रदर्शनी में इसे स्थान दिया गया। यह प्रयोग तंत्र के रूप में सामने आया।

1995 में मीडिया के उपयोग के लिए नेशनल कौंसिल फॉर टैक्नोलॉजी (NCST) द्वारा मात्रा (MATRA) मशीनी अनुवाद तंत्र का विकास किया गया। इसका उद्देश्य था– अंग्रेजी में प्राप्त समाचार को हिंदी में अनुवाद कर यू.एन.आई. में उपयोग करना। इसका उपयोग आज भी विस्तार के साथ हो रहा है अभी और भी विस्तार की अपेक्षा है।

भारत सरकार के राजभाषा विभाग के वित्त–पोषण से सी–डेक, पुणे द्वारा अनुवाद 'तंत्र–मंत्र' का आविष्कार किया गया। इसका उद्देश्य था– सरकार द्वारा जारी सूचनाओं का अनुवाद कर प्रसारित करना। यह कार्य 1996–97 से शुरू हुआ। इस मशीनी तंत्र द्वारा सरल वाक्यों के अनुवाद तक सीमित रखा गया। सी–डेक, पुणे इसे प्रभावी बनाने के लिए प्रयत्नशील है।

मशीनी अनुवाद में स्त्रोत तथा लक्ष्य दो भाषाओं के रूप में अपनाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि यह कार्य आधुनिक कंप्यूटर तकनीक पर आधारित है, किंतु मूलाधार भाषा है। इस प्रकार इसमें भाषिक नियमों के ज्ञाता अर्थात् भाषाविदों की भूमिका विशेष महत्वपूर्ण है। इस कार्य में भाषा की विभिन्न प्रयुक्तियों के अध्ययन–विश्लेषण के आधार पर मशीनी अनुवाद के विकास की आवश्यकता है। इस कार्य को गति देने के लिए विभिन्न भाषा इकाईयों मुख्यतः 'पद–कोश' निर्माण की भी अपेक्षा है। इस दिशा में भारत सरकार का सूचना प्रौद्योगिकी विभाग गंभीरता से कार्य कर रहा है।